अमृतकी बूंदें

•

सम्पादक

आनन्दकुमार

•

मूल्य : एक रुपया

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

अल्पमोली संस्करण

अमृत की बूंदें

चुने हुए सुभाषितों का वर्गीकृत संग्रह

सम्पादक

आनन्दकुमार
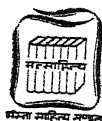
सत्साहित्य प्रकाशन

१९५९

प्रकाशकीय

अच्छे साहित्य को पढ़ने की भूख सब में होती है। लेकिन प्राचीनकाल से अबतक विविध भाषाओं में इतना साहित्य प्रकाशित हुआ है कि उस सबकी जानकारी रखना असंभव है और उसमें से सत्साहित्य का चुनाव करके पढ़ना तो और भी टेढ़ी खीर है। इसलिए अधिकांश पाठक इस बात का स्वागत करते हैं कि उन्हें अच्छी-अच्छी चीजें संक्षेप में पढ़ने को मिलें। अमृत की थोड़ी बूंदें ही पर्याप्त होती हैं।

इस पुस्तक में भारतीय वाङ्मय के विभिन्न ग्रंथों, संत-मनीषियों, चिंतकों एवं विद्वानों के विचारों का मंथन करके उन चुने हुए सुभाषितों का संग्रह किया गया है, जिनका पठन और मनन प्रत्येक व्यक्ति के लिए लाभदायक हो सकता है। इस बात का विशेष ध्यान रक्खा है कि सामग्री में वैचित्र्य रहे और एक ही विषय पर तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से विभिन्न विचार एक ही स्थान पर मिल जायं। पाठकों की सुविधा के लिए समूची सामग्री को पैंतालीस विषयों में विभक्त कर दिया गया है।

यह पुस्तक ऐसी है कि इसे एक बार पढ़ कर संतोष नहीं कर लेना चाहिए। इसे जितनी बार पढ़ा जायगा, जितना उसके विचारों पर मनन किया जायगा, उतना ही आनंद आवेगा। वस्तुतः यह पुस्तक बुनियादी विचार देती है और पाठकों को सोचने के लिए विवश करती है।

इसका प्रकाशन अल्प-मोली-साहित्य-माला में किया जा रहा है, जिससे सामान्य स्थिति के पाठक भी इसे खरीद सकें और नित्यपाठ के लिए अपने पास रख सकें। १७६ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया रक्खा है।

हम चाहते हैं कि ऐसे साहित्य का अधिक-से-अधिक प्रसार हो। आशा है, इसमें पाठकों का सहयोग मिलेगा।

—मंत्री

विषय-सूची

अमृत की बूंदें

: १ :

मंगल कामना

१

या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम् ।
हृदि नः सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती ॥

—शुक्राचार्य

—जिसे कविगण ग्वालों के समान दिन-रात दुहते रहते हैं, फिर भी जो बिना दुही-सी प्रतीत होती है, वह सूक्तियों की कामधेनु सरस्वती हमारे हृदय में निवास करे ।

२

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभि—
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।

—ऋग्वेद

—हे देवगण ! हम कानों से सदा कल्याणवचन सुनें, आंखों से सदा शोभन-दृश्य देखें तथा सदा दिव्य कर्म करते हुए पूर्णायु होकर जियें ।

३

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

—श्रुति

—सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याण का साक्षात्कार करें । दुःख का अंश किसीको भी प्राप्त न हो ।

४

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं
नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ।
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥

—अथर्ववेद

—यह पृथ्वी जो विविध भाषा-भाषियों और विविध धर्मावलंबियों को इस प्रकार धारण करती है जैसे वे एक ही परिवार के सदस्य हों, हमारे लिए दुधार गाय की भांति निरंतर ऐश्वर्य की सहस्रों धाराएं प्रवाहित करे ।

५

नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि ।
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च ॥
मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ।
मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने ॥
यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ।
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु ॥

—मार्कण्डेय पुराण

—समस्त प्राणी प्रसन्न रहें, दूसरों पर भी स्नेह रक्खें; समस्त प्राणियों का कल्याण हो ; सभी निर्भय हों। किसीको भी कोई शारीरिक या मानसिक व्यथा न हो; समस्त प्राणी सबके प्रति मित्रभाव के पोषक हों। जो मुझसे प्रेम करता है उसका संसार में सदा कल्याण हो और जो मेरे प्रति द्वेष रखता है, उसका भी सदा कल्याण ही हो।

: २ :

सुभाषित

१

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

—पृथ्वी पर वास्तव में, जल, अन्न और सुभाषित—यही तीन रत्न हैं। मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़े को रत्न कहते हैं।

२

संसार कटु वृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
सुभाषित-रसास्वादः संगतिः सुजनैः सह ॥

—चाणक्य

संसार-रूपी कटुवृक्ष के यही दो फल अमृत के समान हैं—एक तो सुभाषित का रसास्वादन और दूसरा सज्जनों का समागम।

३

द्राक्षा म्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता ।
सुभाषित-रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

—सुभाषित के रस के आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई, शर्करा—सूखकर—पत्थर-जैसी या किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग को चली गई।

४

धर्मो यशो नयो दाक्ष्यं मनोहारि सुभाषितम् ।
इत्यादि गुणरत्नानां संग्रही नावसीदति ॥

—धर्म, यश, नीति, दक्षता और मनोहर सुभाषित आदि गुणरत्नों का संग्रह करनेवाला मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता।

५

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ **—मनु**

—विष से भी अमृत को, बालक से भी सुभाषित को, बैरी से भी अच्छे आचरण को और गंदी जगह से भी सुवर्ण को ग्रहण कर लेना चाहिए।

६

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा॥

—महाभारत

—जिस प्रकार उञ्छवृत्ति से जीविका चलानेवाला मनुष्य खेत में झड़े हुए अन्नकणों को चुनता है, उसी प्रकार धीर पुरुष को भी सुंदर ढंग से कही हुई सूक्तियों और सत्कर्मों का इधर-उधर जहां से भी हो सके संग्रह करते रहना चाहिए।

७

भाषा तो सन्तन ने कहिया,
संसकिर्त्त रिषिन की बानी है जी।
ज्यों काली-पीली धेनु दुहिया,
एक ही छीर सों जानी है जी॥

—कबीर

८

हमारे सर्वोत्तम विचार दूसरों की देन हैं।

—एमर्सन

: ३ :

तत्त्वज्ञान

१

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो,
रूपं–रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
रूपं रूपं प्रतिरूपं बहिश्च॥

—कठोपनिषद

——जिस प्रकार संपूर्ण ब्रह्मांड में प्रविष्ट एक ही अग्नि भिन्न-भिन्न वस्तुओं के अनुरूप नाना रूपों में व्यक्त होती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों का अंतरात्मा——ईश्वर——एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न प्राणियों में उन्हींके अनुरूप भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकाशित होता है और उन सबके बाहर भी स्वतंत्र रूप से स्थित है।

२

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं,
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च,
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्॥

——मुण्डकोपनिषद्

——वह महान, दिव्य और अचिन्त्य रूप है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर भासित होता है तथा दूर से भी दूर और इस शरीर के अत्यंत समीप भी है। वह चेतनावान प्राणियों में इस शरीर के भीतर उनकी बुद्धि-रूपी गुहा में छिपा हुआ है।

३

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा,
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो,
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥ ——मुण्डकोपनिषद्

——यह अंतःकरण में विराजमान ज्योतिर्मय, शुभ्र आत्मा निश्चय ही सत्यभाषण, तप, ब्रह्मचर्य और यथार्थ ज्ञान से ही सदा प्राप्त हो सकता है। सर्वदोषरहित साधक ही उसे देख पाते हैं।

४

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

——कठोपनिषद्

—उठो, जागो, सत्पुरुषों के पास जाकर तत्त्वज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानीजन उस तत्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण एवं दुस्तर धार के समान दुर्गम बताते हैं।

५

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

—ईशोपनिषद्

—जो मनुष्य संपूर्ण प्राणियों को निरंतर परमात्मा में और संपूर्ण प्राणियों में परमात्मा को देखता है, उसके पश्चात् वह किसीसे घृणा नहीं करता।

६

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

—ईशोपनिषद्

—अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी जगत् है, यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। उस ईश्वर को साथ रखते हुए इसे त्यागपूर्वक भोगते रहो। इसमें आसक्त मत होओ, क्योंकि धन किसका है? किसीका भी नहीं!

७

केनापि देवेन हृदि स्थितेन,
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।

—मेरे हृदय के भीतर किसी अज्ञात देवता का वास है; वह मुझसे जैसा करवाता है, मैं वैसा ही करता हूं।

८

सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः।
गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः॥
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी।
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि॥　—शंकराचार्य

—जिसने परब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया उसके लिए सारा जगत नंदनवन है, सब वृक्ष कल्पवृक्ष हैं, सब जल गंगाजल हैं; उसकी सारी क्रियाएं पवित्र हैं, उसकी वाणी चाहे प्राकृत हो या संस्कृत—वेद का सार है, उसके लिए सारी पृथ्वी काशी है और उसकी सारी चेष्टाएं परमात्मामयी हैं।

९

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ —गीता

—आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है। उसी प्रकार न तो इसको पानी गला सकता और न वायु सुखा सकता है। यह आत्मा कभी न कटनेवाला, न जलनेवाला, न भीगनेवाला और न सूखनेवाला तथा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल एवं सनातन है।

१०

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाऽयं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

—गीता

—यह आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मरता ही है। ऐसा भी नहीं है कि यह एक बार होकर फिर न हो। यह तो अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है और शरीर का वध हो जाने पर भी नहीं मरता।

११

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता

—जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार यह आत्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नवीन शरीर धारण करता रहता है।

१२

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

—गीता

—जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मरता है उसका जन्म निश्चित है। अतएव तुम्हें इस अपरिहार्य बात का शोक नहीं करना चाहिए।

१३

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

—गीता

—मनुष्य अपना उद्धार अपने-आप करे, स्वयं अपनी अवनति या दुर्गति न करे। प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है।

१४

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

—गीता

—जिसने अपने-आपको जीत लिया, वह स्वयं अपना बंधु है; परंतु जो अपने-आपको नहीं पहचानता वह स्वयं अपने साथ शत्रु के समान बैर करता है।

१५

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा संञ्जामयत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो॥ —धम्मपद

—मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है और स्वयं ही अपनी गति है। इसलिए जिस प्रकार कोई व्यापारी अपने उत्तम घोड़े को वश में रखता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने-आपको संयत रक्खे।

१६

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

—गीता

—जिससे समस्त प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह संपूर्ण जगत् व्याप्त है, उसका अपने कर्मों के द्वारा पूजन करने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है।

१७

सिया-राम-मय सब जग जानी।
करउं प्रनाम जोरि जुग पानी॥ —तुलसी

१८

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होंहि मैं जाना॥

—तुलसी

१९

राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि।

—तुलसी

२०

समझा का घर और है अनसमझा का और।
जा घर में साहिब बसै, बिरला जानै ठौर॥

—कबीर

२१

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥ —कबीर

२२

जल में कुंभ, कुंभ में जल है,
बाहर-भीतर पानी ।
फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना,
यह तत कथौ गियानी ।।

—कबीर

२३

यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात ।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ।।

—कबीर

२४

घट-घट में वह साईं रमता,
कटुक बचन मत बोल रे ।

—कबीर

२५

मैं समुझ्यो निरधार,[१] यह जग कांचौ कांचसों ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियत जहां ।।

—बिहारी

२६

बिन्दु में सिन्धु समान, को कासों अचरज कहै ।
हेरनहार हिरान, रहिमन आपुहि आप में ।।

२७

"एक दिन फूल ने आर्त्तभाव से पुकारा—मेरे प्राण ! फल, तुम कहां हो ? फल ने सस्मित उत्तर दिया— नहीं जानते ! मैं तुम्हारे ही अंतर में छिपा बैठा हूं । "

—रवींद्रनाथ ठाकुर

---

१. निश्चय, सिद्धांत ।

२८

देवता भाव का भूखा है, न कि पूजा की सामग्री का।

—बालगंगाधर तिलक

२९

ढूंढ़ता फिरता हूं ऐ 'इकबाल' अपने-आपको।
आप ही गोया मुसाफ़िर, आप ही मंज़िल हूं मैं॥

३०

अपने मन में डूबकर पा जा सुराग़े ज़िन्दगी।
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन॥ —इक़बाल

३१

समुद्र में रहनेवाला बिंदु समुद्र की महत्ता का उपभोग करता है, परंतु उसका उसे ज्ञान नहीं होता। समुद्र से अलग होकर ज्योंही अपनेपन का दावा करने चला कि वह उसी क्षण सूखा। इस जीवन को पानी के बुलबुले की उपमा दी गई है। इसमें मुझे जरा भी अतिशयोक्ति नहीं दिखाई देती।

—मो. क. गांधी

: ४ :

धर्म, सदाचार

१

संक्षेपात्कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वा।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥ —व्यास

—हे मनुष्यो! अधिक कहने से क्या लाभ! हम संक्षेप में तुम्हें धर्म का तत्व बता देते हैं। परोपकार करना पुण्यकर्म है और दूसरों को पीड़ा देना पाप है।

२

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ —व्यास

—धर्म के सार को सुनो और सुनकर हृदयंगम करो। वह यह है कि जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल हो, वैसा आचरण दूसरे के साथ न करे।

३

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले।

—महाभारत

—हे जाजले! उसीने धर्म को जाना कि जो कर्म से, मन से और वाणी से सबका हित करने में लगा हुआ है और जो सभीका नित्य स्नेही है।

४

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्नाः
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

—महाभारत

—वेद और धर्मशास्त्र अनेक प्रकार के हैं। कोई एक ऐसा मुनि नहीं है जिसका वचन प्रमाण माना जाय। अर्थात् श्रुतियों, स्मृतियों और मुनियों के मत भिन्न-भिन्न हैं। धर्म का तत्त्व अत्यंत गूढ़ है—वह साधारण मनुष्यों की समझ में नहीं आ सकता। ऐसी दशा में, महापुरुषों ने—अथवा अधिकतर लोगों ने—जिस मार्ग का अनुसरण किया हो, वही धर्म का मार्ग है, उसी को अपनाना चाहिए।

५

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

—मनु

—सत्य बोले, प्रिय बोले; ऐसा सत्य न बोले जो अप्रिय हो, ऐसा प्रिय भी न बोले जो असत्य हो—यही सनातन धर्म है।

६

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ।।

——मनु

——किसीकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, शुद्धता से रहना, इंद्रियों को वश में रखना——यही चारों वर्णों का अर्थात् सर्वसाधारण का धर्म है।

७

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मकः ।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम ।।

——महाभारत

——जो धर्म दूसरे धर्म का बाधक हो, वह धर्म नहीं कुधर्म है। सच्चा धर्म वही है जो किसी दूसरे धर्म का विरोधी न हो।

८

धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा ।

——महाभारत

——दुष्कर्म से सफलता प्राप्त करने की अपेक्षा सत्कर्म करते हुए मर जाना भी श्रेयस्कर है।

९

आचारः परमोधर्मः ।

——मनु

——सदाचार ही परम धर्म है।

१०

नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ।

——गीता

——कल्याणकारी कर्म करनेवाले की कभी दुर्गति नहीं होती –

११

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।।

—चारित्र्य की रक्षा यत्नपूर्वक करे; धन तो आता-जाता रहता है। धन से क्षीण क्षीण नहीं माना जाता, लेकिन आचार-भ्रष्ट को तो मरा ही समझना चाहिए।

१२

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।

—मनु

—वेद, स्मृति, शिष्टाचार और अपने आत्मा को प्रिय मालूम होना—ये धर्म के चार मूल तत्त्व हैं।

१३

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम् ।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ।।

—महाभारत

—सुख हो या दुःख, प्रिय हो या अप्रिय—जो जिस समय जैसा प्राप्त हो, उसे उस समय, उसी प्रकार, मन को निराश न करते हुए, सेवन करते रहो।

१४

यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुण बहू ।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहुं ।।

—धम्मपद

—जिस प्रकार पुष्पों की राशि में से बहुत-सी मालाएं बनाई जा सकती हैं, उसी प्रकार संसार में जन्म लेने के बाद मनुष्य को चाहिए कि वह शुभ कार्यों की माला गूंथे।

१५

अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥

—धम्मपद

—पाप का न करना अच्छा है, पाप करने से पीछे संताप होता है। पुण्य का करना श्रेयस्कर है, क्योंकि उसे करने के बाद मनुष्य संतप्त नहीं होता ।

१६

सच्चं भणे न कुज्झेय, दज्जा, प्पस्मिम्पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥

—धम्मपद

—सत्य बोले, क्रोध न करे, मांगने पर थोड़ा रहते भी दे—इन तीन बातों से मनुष्य देवताओं के समीप जाता है।

१७

कायेन संबुता धीरा, अथो वाचाय संवुता ।
मनसा संवुता धीरा, ते वे सुपरिसंवुता ॥ —धम्मपद

—जो बुद्धिमान मनुष्य शरीर, वचन, मन से संयत हैं, वास्तव में वही सुसंयमी माने जा सकते हैं।

१८

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।
दन्धं हि करोतो पुञ्जं पापस्मि रमते मनो ॥

—धम्मपद

—शुभ कर्म करने में जल्दी करे, पापों से मन को हटाये। शुभ कर्म में विलंब करने से मन पाप में प्रवृत्त होने लगता है।

१९

पापञ्चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं ।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥

पुञ्जञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्जस्स उच्चयो ॥

—धम्मपद

—यदि पाप करे तो उसे फिर-फिर न करे। उसमें रत न होवे। पाप का संचय दुःख का कारण होता है। यदि शुभ कर्म करे तो उसे फिर-फिर करे। उसमें रत होवे। पुण्य का संचय सुख का कारण होता है।

२०

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता ।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हतः पञ्चेषुपावकः ॥

—भर्तृहरि

—बड़प्पन, पाण्डित्य, कुलीनता और विवेक मनुष्य में उसी समय तक रहते हैं जबतक शरीर में कामाग्नि नहीं प्रज्वलित होती।

२१

जो आपन चाहइ कल्याना ।
सुजस, सुमति, सुभगति सुख नाना ॥
सो परनारि-लिलार गोसाईं ।
तजइ चौथ के चन्द[1] की नाईं ॥

—तुलसी

२२

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम विवेक ।
साहित साहस सत्यब्रत राम भरोसो एक ॥ —तुलसी

२३

परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥ —तुलसी

---

[1] भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी के चंद्रमा को देखने से अकारण कलंक लगता है, ऐसा प्रवाद है।

२४

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥

—इंद्रियों को अपने वश में न रखना विपत्ति का मार्ग है और इंद्रियों को जीतकर अपने वश में रखना संपत्ति—अर्थात सुख, ऐश्वर्य—का मार्ग है । इन दोनों में से जो तुम्हें पसंद हो, उसी रास्ते से जाओ ।

२५

अकीर्तिं विनयो हन्ति, हन्त्यमनर्थं पराक्रमः ।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

—महाभारत

—विनय अपयश का नाश करता है, पराक्रम अनर्थ को दूर करता है, क्षमा सदैव क्रोध को मिटा देता है और सदाचार कुलक्षण को नष्ट करता है ।

२६

अक्रोधेन जयेत्क्रोधं असाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत्कदर्यं दानेन, जयेत् सत्येन चानृतम् ॥

—महाभारत

—क्रोध को शांति से जीते, दुष्ट को साधुता से जीते, कृपण को दान से जीते और असत्य को सत्य से जीते ।

२७

जागते रहनेवाले की रात लंबी हो जाती है, थके हुए का योजन लंबा हो जाता है । इसी प्रकार सद्धर्म को न जाननेवाले मूर्ख आदमी का संसार लंबा हो जाता है । **—धम्मपद**

२८

"जितनी भलाई माता-पिता अथवा भाई-बंधु कर सकते हैं, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा चित्त करता है ।"

—बुद्ध

२९

तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान ।
पाप-पुण्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान ।।

३०

ज्ञान घटै किये मूढ़ की संगत,
ध्यान घटै बिन धीरज लाये ।
प्रीत घटै परदेस बसे अरु,
मान घटै नित ही नित जाये ।।
सोक घटै किये साधु की संगत,
रोग घटै कोउ औषध पाये ।
'गंग' कहै सुनु शाह अकब्बर,
पाप घटै हरि के गुन गाये ।।

३१

जो हमें मोक्ष की ओर बढ़ाता है वह शास्त्र है और जो संयम की शिक्षा दे वह धर्म है।

—मो० क० गांधी

३२

छाती पर गोली झेलना मैं इतना कठिन नहीं समझता, पर रोज काम करना, पल-पल पर अपने साथ लड़ना, अपनी आत्मशुद्धि करना कठिन है ।

—मो० क० गांधी

३३

जो सच बोलना नहीं जानता वह तो खोटा सिक्का है, उसकी कीमत ही नहीं।

—मो० क० गांधी

३४

सत्य और अहिंसा से तुम संसार को अपने सामने झुका सकते हो।

—मो० क० गांधी

३५

चालाकी द्वारा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं होता ।

—विवेकानंद

३६

बजा कहे जिसे आलम उसे बजा समझो ।
ज़ुबाने खल्क को नक्क़ारये ख़ुदा समझो ।।

—ज़ौक

३७

पंडित को भी सलाम है और मौलवी को भी ।
मज़हब न चाहिए मुझे ईमान चाहिए ।।

—अकबर

: ५ :

जीवन की शोभा

१

यस्मिन्श्रुतिपथं प्राप्ते दृष्टे स्मृतिमुपागते ।
आनन्दं यान्ति भूतानि जीवितं तस्य शोभते ।।

—योगवाशिष्ठ

—जिसका वृत्तांत सुनकर, जिसको देखकर, जिसका स्मरण करके समस्त प्राणियों को आनंद होता है, उसीका जीवन शोभा देता है—अर्थात् सफल होता है ।

२

यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवति ।
काकोऽपि किं न कुरुते चञ्च्वा स्वोदरपूरणम् ।।

—जिसके जीने से बहुत-से प्राणी जीते हैं, वही वास्तव में जीवित है । यों तो क्या कौवा भी चोंच से अपना पेट नहीं भर लेता! अर्थात् केवल अपना पेट भर लेने से ही किसीका जीवन सार्थक नहीं होता, यह तो कौवा भी

कर लेता हैं। जो दूसरों का भी पालन-पोषण करे उसीका जीवन सार्थक माना जायगा।

३

भूमौ यावद्यस्य कीर्तिस्तावत्स्वर्गे स तिष्ठति।
अकीर्तिरेव नरको नान्योऽस्ति नरको दिवि॥

—शुक्राचार्य

—जबतक जिसकी कीर्ति संसार में रहती है तबतक वह स्वर्ग में रहता है। अकीर्ति ही नरक है, दूसरा कोई नरक परलोक में नहीं है।

४

न भूषयत्यलंकारो न राज्यं न च पौरुषम्।
न विद्या न धनं तादृक् यादृक् सौजन्यभूषणम्॥

—शुक्राचार्य

—आभूषण, राज्य, पौरुष, विद्या और धन से मनुष्य की वैसी शोभा नहीं होती जैसी कि सौजन्य-रूपी भूषण से होती है।

५

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः॥
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

—भर्तृहरि

—केयूर–बाजूबंद, चंद्रमा के समान उज्ज्वल हार, स्नान, उबटन या सुंदर लेप, फूल और संवारे हुए बाल मनुष्य की शोभा नहीं बढ़ा सकते। मनुष्य द्वारा धारित एकमात्र सुसंस्कृत वाणी ही उसको अलंकृत कर सकती है। अन्य भूषण नष्ट होते रहते हैं। लेकिन वाणी का भूषण सच्चा भूषण है जो कभी नष्ट नहीं होता।

६

नभोभूषा पूषा कमलवनभूषा मधुकरो।
वचोभूषा सत्यं वरविभवभूषा वितरणम् ॥
मनोभूषा मैत्री मधुसमयभूषा मनसिजः।
सदोभूषा सूक्तिः सकलगुणभूषा च विनयः॥

—आकाश का भूषण सूर्य है, कमलवन का भूषण भ्रमर है, वाणी का भूषण सत्य है, संपन्नता का भूषण दान करना है, मन का भूषण मित्रता है, मधुमास का भूषण कामदेव है, सभा का भूषण सूक्ति है और समस्त गुणों का भूषण विनय है।

७

दानेन पाणिर्नतु कंकणेन,
स्नानेन शुद्धिर्नतु चन्दनेन ।
मानेन तृप्तिर्नतु भोजनेन,
ज्ञानेन मुक्तिर्नतु मंडनेन ॥ **—चाणक्य**

—दान देने से ही हाथ की शोभा बढ़ती है, गहनों से नहीं; स्नान करने से शुद्धि होती है, चंदन लगाने से नहीं; आदर-सम्मान मिलने से तृप्ति होती है, केवल भोजन से नहीं; ज्ञान से मुक्ति होती है, बाह्य उपकरणों से नहीं।

८

मानुष्यं वरवंशजन्म विभवो दीर्घायुरारोग्यता ।
सन्मित्रं सुसुतः सती प्रियतमा भक्तिश्च नारायणे ॥
विद्वत्त्वं सुजनत्वमिन्द्रियजयः सत्पात्रदाने रति—
स्ते पुण्येन विना त्रयोदश गुणाः संसारिणां दुर्लभाः ॥

—मनुष्यता, कुलीनता, ऐश्वर्य, दीर्घजीवन, आरोग्य, सन्मित्र, सुपुत्र, सती भार्या, ईश्वर-भक्ति, विद्वत्ता, सौजन्य, जितेंद्रियत्व, सत्पात्र को दान देने की प्रवृत्ति—ये तेरह गुण मनुष्यों को दुर्लभ हैं, पुण्य के बिना नहीं मिलते। दूसरे शब्दों में, ये तेरह गुण मनुष्यों को पुण्य से ही मिलते हैं।

९

कलासीमा काव्यं सकलगुणसीमा वितरणं ।
भये सीमा मृत्युः सकलसुखसीमा सुवदना ।।
तपः-सीमा मुक्तिः सकलकृतिसीमाश्रितभृतिः ।
प्रिये सीमाह्लादो श्रवणसुखसीमा हरिकथा ।।

—कला की सीमा काव्य है—अर्थात् जितनी कलाएं हैं, उनमें काव्य सर्वश्रेष्ठ है; समस्त गुणों की सीमा दान है; भयों में मृत्यु का भय प्रधान है; समस्त सुखों में सुंदरी स्त्री का मुख-सुख प्रमुख है; तप की सीमा मुक्ति है; समस्त कृतियों या कर्त्तव्यों में आश्रितों का पोषण सबसे महत्वपूर्ण है; प्रिय वस्तुओं में आह्लाद और श्रवण-सुखों में हरिकीर्तन सर्वोत्तम है।

१०

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पंडितः ।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ।।
इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पंडितः ।
हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सम्मानदानतः ।।

—युद्ध जीतने से ही कोई शूर नहीं हो जाता। इसी प्रकार शास्त्र पढ़ लेने से ही कोई पंडित नहीं हो सकता। वाक्पटुता से ही कोई सच्चा वक्ता नहीं होता और केवल धन दान करने से ही कोई दानी नहीं होता। सच्चा शूर वह है जो इंद्रियों को जीत लेता है; पंडित वह है जो धर्म के अनुसार आचरण करता है। जो हितकर वचन बोले वही सच्चा वक्ता है और जो दूसरों का मान-सम्मान करे वही दाता है।

११

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च,
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।

—महाभारत

—सद्बुद्धि, कुलीनता, जितेंद्रियत्व, शास्त्र-ज्ञान, पराक्रम, अल्पभाषण, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता—ये आठ गुण मनुष्य को चमका देते हैं।

१२

एको गुणः खलु निहन्ति समस्त दोषान् ।

—चाणक्य

—एक गुण समस्त दोषों को ढंक देता है।

१३

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ।।

—महाभारत

—दो प्रकार के मनुष्य स्वर्ग के ऊपर स्थान पाते हैं—एक तो जो ऐश्वर्यशाली होकर क्षमावान हो, दूसरा जो दरिद्र होकर भी दानी हो।

१४

श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां,
स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः ।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा,
नाशाविभङ्गा विमुखाः प्रयान्ति ।।

—संसार में मनुष्यों में वही एक प्रशंसा के योग्य है, वही उत्तम है, वही सत्पुरुष और वही धन्य है, जिसके यहां से याचक या शरणागत मनुष्य हताश होकर न लौटें।

१५

ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है ।
मुर्दादिल ख़ाक जिया करते हैं ।।

—नासिख़

१६

फ़क़ीरों से सुना है हमने 'हातिम' ।
मज़ा जीने का मर जाने में देखा ।।

१७

मरने से मफ़र[१] नहीं है जब अय 'अकबर ।
बेहतर यही है खुशी से मरना सीखो ।।

१८

आज़ाद से दीन[२] का गिरफ़्तार अच्छा ।
शरमिंदा हो दिल में जो गुनहगार अच्छा ।।

—अकबर

१९

कोई हँस के मरा दुनिया में कोई रोके मरा ।
ज़िंदगी पाई मगर उसने जो कुछ होके मरा ।।

—अकबर

२०

जी उठा मरने से वह जिसकी खुदा पर थी नज़र ।
जिसने दुनिया ही को पाया था वह सब खोके मरा ।।

—अकबर

२१

जब तुम जनमे जगत में, जगत हँसा तुम रोय ।
ऐसी करनी कर चलो, तुम बिहंसो जग रोय ।।

: ६ :

मान-प्रतिष्ठा

१

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ।।

—चाणक्य

---

[१] भागने की जगह [२] धर्म

——निम्न श्रेणी के मनुष्य केवल धन की, मध्यम श्रेणी के मनुष्य धन और मान दोनों की तथा श्रेष्ठ पुरुष केवल मान की ही कामना करते हैं। मान ही श्रेष्ठ पुरुषों का धन है।

२

वरं प्राणपरित्यागो मानभंगेन जीवनात्।
प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मान-भंगे दिनेदिने॥

——चाणक्य

——अपमान के साथ जीने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है। मरने से एक क्षण दुःख होगा, अपमान से दिन-प्रतिदिन।

३

अधमाः कलिमिच्छन्ति, सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम्॥
मानो हि मूलमर्थस्य, माने-म्लाने धनेन किम्।
प्रभ्रष्टमानदर्पस्य, किं धनेन किमायुषा॥

——गरुड़पुराण

——तुच्छ मनुष्य कलह पसंद करते हैं, मध्यम श्रेणी के पुरुष संधि चाहते हैं और उत्तम मनुष्य मान की इच्छा करते हैं। मान ही श्रेष्ठ पुरुषों का धन है। मान ही अर्थ का मूल है, मान के नष्ट होने पर धन किस काम का! जिसका मान-दर्प नष्ट हो गया उसके जीवन और धन से क्या लाभ! अर्थात् उसका जीवन और धन-वैभव व्यर्थ है।

४

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात्परं भयम्॥

——महाभारत

——तुच्छ मनुष्यों को जीविका की हानि का, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को जीवन-हानि का और उत्तम पुरुषों को मान-हानि का बड़ा भय रहता है।

५

नाभिमानपरित्यागः कर्त्तुं शक्यो मुनेरपि ।

—राजतरंगिणी

—ऋषि-मुनि भी स्वाभिमान का परित्याग नहीं कर सकते ।

६

वरं हि मानिनो मृत्युर्न दैन्यं स्वजनाग्रतः ।

—स्वजनों के आगे दीनता दिखाने की अपेक्षा स्वाभिमानी पुरुष के लिए मर जाना ही अच्छा है ।

७

पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः ॥

—शिशुपालवध

—जो धूल पैर से आहत होने पर उठकर सिर पर चढ़ जाती है, वह उस मनुष्य से अच्छी है, जो अपमान होने पर भी शांत बैठा रहता है ।

८

अग्निदाहे न मे दुःखं छेदेन निकषेण वा ।
यत्तदेव महद्दुःखं गुंजया सह तोलनम् ॥

—स्वर्ण का कथन है—मुझे आग में तपाये जाने, काटे जाने और कसौटी पर कसे जाने का दुःख नहीं है; सबसे बड़ा दुःख यह है कि मुझे घुंघची से तौला जाता है ।

९

अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते ।
निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्नतु ज्वलितः ॥

—शक्तिशाली होकर भी जो अपनी शक्ति को प्रकट नहीं करता वह दूसरों से तिरस्कृत होता है । प्रज्वलित अग्नि का उल्लंघन कोई नहीं करता, लेकिन काठ के भीतर रहनेवाली का सब करते हैं ।

१०

न लोके राजते मूर्खः केवलात्मप्रशंसया ।

—महाभारत

—केवल अपने मुंह से अपनी बड़ाई करने से कोई मूर्ख संसार में प्रतिष्ठा नहीं पा सकता ।

११

परस्तुतगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ।

—चाणक्य

—जिसकी प्रशंसा दूसरे लोग करें वह यदि गुणहीन हो तो भी गुणी माना जाता है । अपने मुंह से अपनी बड़ाई करने से तो इंद्र भी लघुता को प्राप्त होता है ।

१२

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः ।

—मनुष्य के गुण ही सर्वत्र पूजे जाते हैं; पितृवंश—अर्थात् उच्च कुल का गौरव व्यर्थ है ।

१३

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः ।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते !! —चाणक्य

—गुणों से बड़प्पन मिलता है, उच्चासन पर बैठने से नहीं । भव्य भवन के कंगूरे पर बैठने से भी कौवा क्या गरुड़ हो जाता है ।

१४

बलशौर्याद्यभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना ।
लङ्घनीयः समस्तस्य बलशौर्यविवर्जितः ॥ —विष्णुपुराण

—गुण-हीन मनुष्य में बल–शौर्य आदि सभीका अभाव हो जाता है; बलशौर्य से रहित मनुष्य सभीसे अपमानित होता है ।

१५

स्वगृहे पूज्यते मूर्खः स्वग्रामे पूज्यते प्रभुः ।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

—चाणक्य

—मूर्ख अपने घर में, मालिक-मुखिया अपने गांव में और राजा अपने राज्य ही में आदर पाता है, लेकिन विद्वान् सर्वत्र सम्मानित होता है ।

१६

विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्खः स पुराद्बहिरस्तु मे ।
कुंभकारोऽपि यो विद्वान् स तिष्ठतु पुरे मम ॥

—राजा भोज की घोषणा—ब्राह्मण भी यदि विद्या-रहित हो तो उसे नगर में स्थान नहीं मिलेगा । कुम्हार भी यदि विद्वान् हो तो वह मेरी राजधानी में बसे ।

१७

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि ।
निरस्त-पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥

—जहां विद्वान् नहीं होते वहां थोड़ी बुद्धिवाला मनुष्य भी बड़ाई पा जाता है । जहां पेड़ नहीं होते वहां एरंड ही पेड़ मान लिया जाता है ।

१८

काकस्य गात्रं यदि काञ्चनस्य,
माणिक्यरत्नं यदि चञ्चुदेशे ।
एकैकपक्षे ग्रथितं मणीनां,
तथापि काको न तु राजहंसः ॥

—कौवे का शरीर चाहे सोने का हो, उसकी चोंच में माणिक्य-रत्न जड़ा हो और उसका एक-एक पंख मणियों से गूंथा हुआ हो, फिर भी वह कौवा ही बना रहेगा, राजहंस नहीं हो जायगा ।

१९

स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं,
गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा ।
निजाङ्गना यद्यपि रूपराशिः,
तथापि लोकः परदारसक्तः ।।

——अपने देश-गांव-घर के अत्यंत गुणवान् मनुष्य की भी उपेक्षा होती है। अपनी स्त्री चाहे अत्यंत रूपवती हो, फिर भी लोग परस्त्री पर आसक्त होते हैं।

२०

प्रत्यक्ष-कवि-काव्यं च रूपं च कुलयोषितः ।
गृहवैद्यस्य विद्या च कस्मैचिद्यदि रोचते ।।

——राजशेखर

——प्रत्यक्ष कवि की कविता, कुलवधू की सुंदरता और घर के वैद्य की चिकित्सा किसी-किसीको ही अच्छी लगती है——अर्थात् प्रायः लोग इनकी अवहेलना ही करते हैं।

२१

न कुलं हीनवृत्तस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।
अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ।।

——महाभारत

——मेरा ऐसा मत है कि आचरणहीन मनुष्य का केवल ऊंचा कुल गौरव का प्रमाण नहीं हो सकता; क्योंकि नीच कुल में उत्पन्न मनुष्यों का भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है।

२२

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः, ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठाः, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ।।

——मनु

——मूर्खों से ग्रंथ पढ़नेवाले, पढ़नेवालों से विषय को धारण करनेवाले

और विषयधारकों से ज्ञानी तथा ज्ञानियों से कर्म करनेवाले श्रेष्ठ हैं।

२३

पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि स प्रभावो धनस्य च ॥

—यह धन का ही प्रभाव है कि—धन होने के कारण—अपूज्य व्यक्ति भी पूजित होता है, अगम्य के निकट भी जाया जाता है, अवन्द्य पुरुष भी वंदनीय हो जाता है।

२४

अकुलीनोऽपि मूर्खोऽपि भूपालं योऽत्र सेवते ।
अपि संमानहीनोऽपि स सर्वत्र प्रपूज्यते ॥

—पंचतंत्र

—राजकर्मचारी अकुलीन, मूर्ख और सम्मानहीन होने पर भी सर्वत्र सम्मानित होता है।

२५

—ऐरावत पर चढ़कर चलनेवाला देवराज इंद्र बूढ़े बैल पर सवार शिव के आगे मस्तक झुकाता है। —कुमारसंभव

२६

—अपरिचित होने से देवता को भी तिरस्कृत होना पड़ता है।

—स्वप्नवासवदत्ता

२७

परान्नं परवस्त्रं च, परशय्या परस्त्रियः ।
परवेश्मनिवासश्च शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ —चाणक्य

—पर-अन्न, पर-वस्त्र, पर-शय्या, पर-स्त्री का सेवन और पराये घर का वास इंद्र की भी महिमा को नष्ट कर देता है।

२८

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेणह्यस्याशु ब्राह्मतेजः प्रशाम्यति ॥ —मनु

––दान लेने का पात्र या अधिकारी होने पर भी बार-बार दान न ले, क्योंकि उससे ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है।

२९

बालसखित्वमकारणहास्यं,
स्त्रीषु विवादमसज्जनसेवा।
गर्दभयानमसंस्कृतवाणी,
षट्सु नरो लघुतामुपयाति॥

––बुद्धिहीनों की संगति, बिना कारण हँसने, स्त्री के साथ विवाद करने, दुष्ट की सेवा करने, गधे पर सवारी करने, असंस्कृत वाणी बोलने––इन छह बातों से मनुष्य हीनता को प्राप्त होता है।

३०

यत्र देशेऽथवा स्थाने भोगान्भुक्त्वा स्ववीर्यतः।
तस्मिन् विभवहीनो यो वसेत् स पुरुषाधमः॥

––महाभारत

––जिस देश अथवा जिस स्थान में अपने पुरुषार्थ से अनेक भोगों को भोगे वहां जो विभवहीन होकर बसे वह पुरुष नीच है।

३१

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्ष,
स तस्य निन्दां सततं करोति।

––जो जिसके गुणोत्कर्ष को नहीं जानता, वह उसकी सदैव निंदा ही करता है।

३२

जब गुन को गाहक मिलै, तब गुन लाख विकाय।
जब गुन को गाहक नहीं, कौड़ी बदले जाय॥

––कबीर

३३

हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी हो हाट ।
कसकर बाँधो गाठरी, उठकर चालो बाट ॥

—कबीर

३४

मानुस बैठे चुप करे, कदर न जाने कोय ।
जब ही मुख खोले कली, प्रगट वास तब होय ॥

—कबीर

३५

हीरा परा बजार में रहा छार लपटाय ।
बहुतक मूरख चलि गये, पारख लिया उठाय ॥

—कबीर

३६

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥

—कबीर

३७

घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय ।

—कबीर

३८

सारदूल को स्वांग करि, कूकर की करतूति ।
'तुलसी' तापर चाहिए, कीरति, विजय, बिभूति ॥

३९

खल उपहास होइ हित मोरा ।
काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥

—तुलसी

४०

रहिमन पानी[1] राखिये, बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुस, चून ।।

४१

रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पिआवत मान बिन ।
बरु विष देय बुलाय, मानसहित मरिबो भलो ।।

४२

बरु रहीम कानन बसिअ, असन करिअ फल तोय ।
बन्धु-मध्य गति दीन ह्वै, बसिबो उचित न कोय ।।

४३

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल ।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ।।

४४

जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ।।

४५

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधा मौन ।
अब दादुर वक्ता भये, हमहिं पूछिहै कौन ।।

४६

काकी प्रभुता नहिं घटी,
परघर गये रहीम ।

४७

अरे हंस, या नगर में, जैयो आपि बिचारि ।
कागन सों जिन प्रीति करि, कोयल दई बिडारि ।।

—बिहारी

---

[1] आभा, आत्मसम्मान, जल ।

४८

सबै हँसत करतारि दै, नागरता के नांव ।
गयो गरब गुन को सबै, बसे गंवारे गांव ।।

—बिहारी

४९

करि गुलाब को आचमन, मीठो कहत सराहि ।
रे गंधी ! मतिअंध तू अतर दिखावत काहि ।।

—बिहारी

५०

बड़े न हूजै गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय ।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गड़ो न जाय ।।

—बिहारी

५१

बहँकि बड़ाई आपनी कत रांचत[1] मति भूल ।
बिन मधु मधुकर कैं हियैं गड़ै न गुड़हर फूल ।।

—बिहारी

५२

प्रगटत जड़ता आपनी मुकुट पहिरियत पांय ।

—बिहारी

५३

दिये लोभ चसमा चखनि,
लघु हू बड़ो लखाय ।

—बिहारी

५४

कहा भानु को घटि गयो,
जो घटि लखै उलूक !

—वृंद

---

[1] लाल या प्रसन्न होता है ।

५५

भले-बुरे जहं एक से, तहां न बसिये जाय ।
ज्यों अन्यायपुर में बिके, खर-गुर एकै भाय ।।

—वृंद

५६

गुन के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय ।

—गिरिधर

५७

नाज़ उसीसे कर जो तेरा खरीदार हो ।

—शेख सादी

५८

जो निर्लोभ है उसकी गर्दन ऊंची रहेगी ।

—शेख सादी

५९

अरबी घोड़ा अगर दुबला-पतला हो तो भी गदहों के पूरे अस्तबल से अच्छा है ।

—शेख सादी

६०

दूसरों का सम्मान करो, लोग तुम्हारा भी सम्मान करेंगे ।

—कनफ़्यूशियस

६१

दूसरों ने उसकी पूछ नहीं की, इस बात को जानकर भी जो उद्विग्न नहीं होता, क्या वह महापुरुष नहीं है ?

—कनफ़्यूशियस

६२

—अरस्तू उन्हीं लोगों का गुरु है, जो उसे जानते हैं ।

—दांते

६३

करो दोस्तो ! पहले आप अपनी इज्जत ।
जो चाहो करें लोग इज्जत ज़ियादा ।।

—हाली

६४

जो चाहो फ़कीरों में इज्जत से रहना ।
न रक्खो अमीरों से मिल्लत ज़ियादा ।।

—हाली

६५

कमी नहीं क़द्रदाँ की 'अकबर' ।
करे तो कोई कमाल पैदा ।

६६

चमन में आह क्या रहना,
जो हो बेआबरू रहना ।।

—इक़बाल

: ७ :

यश, अपयश

१

वयं सर्वेषु यशसः स्याम । —अथर्ववेद

—हम समस्त जीवों में यशस्वी हों।

२

अयशो भयं भयेषु । —कौटिल्य

—अपयश का भय सबसे बड़ा भय है।

३

स जीवति यशो यस्य कीर्तिर्यस्य स जीवति ।
अयशोऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतोपम : ।।

—यशस्वी एवं कीर्तिवान् मनुष्य ही, वास्तव में, जीवित है। यश और

कीर्ति से हीन मनुष्य जीता हुआ भी मृत के समान है।

४

उत्तमा आत्मना ख्याताः, पितुः ख्यातास्च मध्यमाः ।
मातुलेनाधमाः ख्याताः, श्वसुरेणावमाधमाः ॥

—जो अपने नाम से प्रसिद्ध होते हैं, वे उत्तम, जो पिता के नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे मध्यम, जो मामा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे अधम और जो ससुर के नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे अधमाधम मनुष्य हैं।

५

अयशः प्राप्यते येन, येन चापगतिर्भवेत् ।
स्वर्गाच्च भ्रश्यते येन, तत्कर्म न समाचरेत् ॥

—जिससे मनुष्य को अपयश मिले, अपनी दुर्गति हो और स्वर्ग से भ्रष्ट होना पड़े, ऐसा काम न करना चाहिए।

६

कबीर मेरे साधु की निंदा करौ न कोय ।
जौ पै चंद्र कलंक है, तऊ उंजारा होय ॥

७

तुलसी जो कीरति चहहिं पर-कीरति को खोय ।
तिनके मुंह मसि लागिहै, मुयेहु न मिटिहै धोय ॥

८

छोटे काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होय ।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरिधर कहै न कोय ॥

९

कह गिरिधर कबिराय बड़न की बड़ी बड़ाई ।
थोरे ही जस होय, जसी पुरुषन को साईं ॥

१०

करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं ॥

११

पचास वर्षों की बहुत-सी नेकनामी को केवल एक बदनामी मटियामेट कर देती है ।

—शेख सादी

१२

अगर तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी बड़ाई करें तो अपने मुंह से अपनी बड़ाई मत करो ।

—पैसकल

१३

जो व्यक्ति मेरे यश पर डाका डालता है वह एक ऐसी चीज का अपहरण करता है जो यद्यपि उसे तो धनी नहीं बनाती, किंतु मुझे ग़रीब अवश्य बना जाती है ।

—शेक्सपियर

१४

धन्य है वह मनुष्य जिसकी ख्याति उसकी वास्तविकता से अधिक प्रकाशमान नहीं है ।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

१५

'ग़ालिब' बुरा न मान जो वायज़ बुरा कहे ।
ऐसा भी है कोई कि सब अच्छा कहें जिसे ॥

१६

ज़िक्र मेरा मुझसे बेहतर है कि उस महफ़िल में हो ।

—ग़ालिब

१७

तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ 'ज़ौक' ।
है बुरा वह ही कि जो तुझको बुरा जानता है ॥

: ८ :

स्वाधीनता

१

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

—महाभारत

—जो कुछ दूसरे के अधीन है, सब दुःखरूप है और जो कुछ अपने अधीन है, सब सुखरूप है । संक्षेप में सुख-दुःख का यही लक्षण जानना चाहिए ।

२

पराधीनं वृथा जन्म परस्त्रीषु वृथा सुखम् ।
परगेहे वृथा लक्ष्मीर्विद्या या पुस्तके वृथा ॥

—पराधीन जीवन व्यर्थ है; पर-स्त्री-सुख व्यर्थ है, पराये घर में पड़ी संपत्ति व्यर्थ है; पुस्तक ही में पड़ी रहनेवाली विद्या व्यर्थ है ।

३

मुक्तबुद्धीन्द्रियो मुक्तो बद्धकर्मेन्द्रियोऽपि हि ।
बद्धबुद्धीन्द्रियो बद्धो मुक्तकर्मेन्द्रियोऽपि हि ॥

—योगवासिष्ठ

—"जो मन से मुक्त है वही मुक्त है, चाहे वह कर्मेंद्रियों के व्यवहार में बंधा हुआ ही हो और जो मन से बद्ध है वही बद्ध है, चाहे वह कर्मेंद्रियों से कुछ न करता हो ।"

४

मनुष्य झुकने के लिए नहीं, वरन् सिर उठाकर आत्मसम्मान से आगे बढ़ने के लिए उत्पन्न हुआ है । किसीके अनुचित दबाव को आश्रय न दो, अन्याय को मत सहो । सत्य की रक्षा के लिए यदि आवश्यकता पड़े तो प्राण भी दे दो ।

—मो. क. गांधी

५

कोई आदमी, चाहे वह कैसा ही अक्लमंद क्यों न हो, हमें हमेशा रास्ता दिखाता रहे, और इस प्रकार हम अपनेको गलती से बचाते रहें, इससे यह हजार दर्जे अच्छा है कि हम अपनी भूलों द्वारा स्वयं नष्ट हो जायं।

—मो. क. गांधी

६

अधिकार दिखाने से ही अधिकार सिद्ध नहीं हो जाता।

—मो. क. गांधी

७

अन्याय और अत्याचार करनेवाला उतना दोषी नहीं है, जितना कि उसे सहन करनेवाला।

—बालगंगाधर तिलक

८

मिटनेवालों को वफ़ा[1] का यह सबक़ याद रहे।
बेड़ियां पैर में हों और दिल आज़ाद रहे॥

—चकबस्त

: ९ :

स्वराज्य, सुराज्य

१

सत्ये राज्यं प्रतिष्ठितम्।

—अध्यात्म रामायण

—सत्य में ही राज्य प्रतिष्ठित है। दूसरे शब्दों में, राज्य सत्य पर ही टिकता है।

२

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम्।

—रघुवंश

[1] कर्तव्य-पालन; लगन; सचाई।

—सदाचार में स्थित जनता के अधिपति को यदि पृथ्वी कामधेनु हो तो इसमें आश्चर्य क्या है।

३

श्रुतेन बुद्धिर्व्यसनेन मूर्खता,
मदेन नारी सलिलेन निम्नगा।
निशा शशाङ्केन धृतिः समाधिना,
नयेन चालंक्रियते नरेन्द्रता॥

—शास्त्र से बुद्धि, व्यसन से मूर्खता, मद से नारी, पानी से नदी, चंद्रमा से रात्रि, समाधि से धैर्य तथा नीति से राजापन शोभायमान होता है।

४

विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत्।

—महाभारत

—जो आत्मसंयमी और मेधावी है वही राज्य का पालन कर सकता है।

५

श्रेष्ठो न मानहीनः स्यात्न्यूनो मानाधिकोऽपि न।
राष्ट्रे नित्यं प्रकुर्वीत श्रेयोर्थी नृपतिस्तथा॥ —शुक्र

—श्रेष्ठजन मान-सम्मान से वंचित और साधारण लोग योग्यता से अधिक सम्मानित न हों—ऐसी व्यवस्था राष्ट्र में कल्याण का अभिलाषी शासक करे।

६

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां तु विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्त्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

—जहां अपूज्य लोग पूजे जाते हैं और पूज्यजनों का अनादर होता है, वहां यह तीन अनर्थ होते हैं—दुर्भिक्ष, मरण और भय।

७

सर्वे हि यत्र नेतारः सर्वे पंडितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति, तद्वृन्दमवसीदति॥

—जहां सभी नेता हों, सभी बड़े बुद्धिमान बनते हों और सभी महत्वाकांक्षी हों वह समाज नष्ट हो जाता है।

८

प्रकृतिकोपः सर्वकोपेभ्यो गरीयान्। —कौटिल्य

—जनता का कोप सब कोपों से बढ़कर है।

९

अधिकारमदं पीत्वा को न मुह्यात् पुनश्चिरम्

—शुक्र

—अधिकार-मद को चिरकाल तक पीकर कौन मोह को नहीं प्राप्त होता।

१०

यस्यानियमितं कर्म साधुत्वं वचनेष्वपि।
सदैव कुटिलः सोऽयं स्वपदाद्दाग्विनश्यति॥ —शुक्राचार्य

—जिस शासक के काम का कोई नियम नहीं रहता उसके वचन चाहे अच्छे हों तो भी वह सदैव कुटिल है और अपने पद से शीघ्र पतित हो जाता है।

११

नीति न तजिय राजपद पाये। —तुलसी

१२

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती।
चलहिं सुधर्मनिरत श्रुति-रीती॥
बैर न करहि काहु सन कोई।
राम-प्रताप विषमता खोई॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लक्षणहीना॥ —तुलसी

१३

रहिमन राज सराहिये ससि सम सुखद जो होय ।
कहा बापुरो भानु है तप्यो तरैयन खोय ।।

१४

किसी राज्य को चलाने के लिए अच्छे क़ानूनों की उतनी जरूरत नहीं होती जितनी कि अच्छे अधिकारी की ।

—अरस्तू

१५

अत्याचार का निश्चित परिणाम अराजकता है क्योंकि जो शक्ति क़ानूनों से सीमित नहीं होती, उसकी रक्षा क़ानून भी नहीं कर सकता ।

—मिल्टन

१६

वही सरकार सबसे अच्छी है जो सबसे कम शासन करती है ।

—थॉरो

१७

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ।

—बालगंगाधर तिलक

१८

अगर पुलिस पर ही भरोसा रखोगे तो याद रखो कि स्वराज्य कभी न मिलेगा . . . . याद रखो कोई शेर की कुर्बानी नहीं देता, कुर्बानी के लिए भी बकरे को ही चुना जाता है । कमजोर होना ही मुसीबत का घर है ।

—मदनमोहन मालवीय

१९

मेरी भावना का प्रजातंत्र वह है जिसमें छोटे-से-छोटे व्यक्ति की आवाज़ को भी उतना ही महत्व मिले जितना एक समूह की आवाज़ को ।

—मो. क. गांधी

२०

हर लोकतंत्रवादी का पूर्ण रूप से निस्स्वार्थ होना आवश्यक है। उसे अपने और अपने दल के स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि लोकतंत्र के लिए ही सोचना और स्वप्न देखना चाहिए।

—मो. क. गांधी

२१

कानून और व्यवस्था के सच्चे प्रेमी वही हैं जो उसका पालन उस समय भी करते हैं, जब सरकार उसे तोड़ती है।

—मो. क. गांधी

२२

बुरी सरकार के शासन में अच्छे स्त्री-पुरुषों के लिए जेल को छोड़कर कोई स्थान नहीं।

—मो. क. गांधी

२३

सरकार तो जनशक्ति का छोटा-सा अंश है।

—विनोबा

२४

कसीदे से न चलता है न यह दोहे से चलता है।
समझ लो खूब कारे सल्तनत लोहे से चलता है॥

—अकबर

२५

सुधार-कार्यों के लिए भी हमें अपनी ताक़त के बाहर पांव न बढ़ाना चाहिए।

—मो. क. गांधी

: १० :

भावना

१

यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥

—श्रीमद्भागवत

—देहधारी जीव स्नेह से, द्वेष से अथवा भय से जिस किसीमें भी संपूर्ण रूप से अपने चित्त को लगा देता है, अंत में वह तद्रूप हो जाता है।

२

येन येन यथा यद्यद्यथा संवेद्यतेऽनघ !
तेन तेन तथा तत्तत्तथा समनुभूयते ।

—योगवासिष्ठ

—जिस वस्तु का जिस भाव से चिंतन किया जाता है, वह वस्तु उसी प्रकार से अनुभव में आने लगती है।

३

अमृतत्वं विषं याति सदैवामृतवेदनात् ।
शत्रुर्मित्रत्वमायाति मित्रसंवित्तिवेदनात् ॥

—योगवासिष्ठ

—"सदा अमृत-रूप से चिंतन करने से विष भी अमृत हो जाता है और सदा मित्र-भाव से चिंतन करने से शत्रु भी मित्र हो जाता है।"

४

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ।
भावो हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम् ॥

—चाणक्य

—देवता न तो काठ में रहते हैं, न पत्थर में और न मिट्टी में। देवता तो भाव में रहते हैं, इसलिए भाव ही सबका कारण है।

५

मन्त्रे, तीर्थे, द्विजे, देवे, दैवज्ञे, भेषजे, गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

—स्कंदपुराण

—मंत्र, तीर्थ, द्विज, देवता, ज्योतिषी, औषध और गुरु में जिसकी जैसी भावना रहती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।

६

जाकी रही भावना जैसी ।
तिन देखी प्रभु मूरति तैसी ॥

—तुलसी

७

तालीम का शोर इतना, तहज़ीब का गुल इतना ।
बरकत जो नहीं होती, नीयत की ख़राबी है ॥

—अकबर

: ११ :

सुमति

१

उत्पन्न-पश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य न स्यान्महोदयः ॥

—चाणक्य

—दुष्कर्म करने के बाद पश्चात्ताप करते समय जैसी बुद्धि हो जाती है, वैसी ही यदि पहले भी रहती तो किसकी उन्नति न होती।

२

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम् ।
अहो सुमनसां वृत्ति र्वामदक्षिणयोः समा ॥

—जैसे अंजलि में लिये हुए फूल बांयें और दाहिने दोनों हाथों को

समान रूप से सुगंधित करते हैं, उसी प्रकार सुधी, सज्जन शत्रु-मित्र सबके प्रति एक-सा भाव रखते हैं।

३

मित्रस्य मा चक्षुषासर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा समीक्षे ।

—श्रुति

—सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखता हूं।

४

वंदौं संत समान चित हित-अनहित नहिं कोउ ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ ।।

—तुलसी

५

जहां सुमति तहं संपति नाना ।
जहां कुमति तहं बिपति निदाना ।।

—तुलसी

६

जो मति पीछे ऊपजै, सो मति पहिली होय ।
कवहुं न होवै जी दुखी, 'दादू' सुखिया सोय ।।

७

अच्छा है दिल के पास रहे, पासबाने-अक्ल ।
लेकिन कभी-कभी उसे तनहा भी छोड़ दे ।।

—इक़बाल

८

सुमति के बिना शक्ति केवल मूर्खता और पागलपन है।

—शेख सादी

: १२ :

विद्या

१

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ।

—चाणक्य

—सभी धनों में विद्या-धन मुख्य है ।

२

विद्याधनमधनानाम् ।

—कौटिल्य

—निर्धनों का विद्या ही धन है ।

३

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

—विद्या विनय देती है, विनय से योग्यता या सुपात्रता मिलती है, योग्यता से धन-लाभ, धन से धर्म और धर्म से सुख होता है ।

४

सुखार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां, विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥

—महाभारत

—सुख चाहनेवाले को विद्या और विद्या चाहनेवाले को सुख कहां ! सुख चाहनेवाले को विद्या और विद्यार्थी को सुख की कामना छोड़ देनी चाहिए ।

५

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥

—चाणक्य

—जिसके स्वयं कुछ बुद्धि नहीं है, उसको शास्त्र क्या लाभ पहुंचा सकता है ? अंधे मनुष्य को दर्पण क्या दिखलायेगा ?

६

अनन्त-शास्त्रं बहुलाश्च विद्याः,
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

—चाणक्य

—शास्त्र अनेक हैं, विद्याएं भी बहुत हैं, समय थोड़ा है, विघ्न-बाधाएं भी बहुत-सी हैं। अतएव जैसे हंस जल-मिश्रित दूध में से जल को अलग करके केवल दूध को ले लेता है, उसी प्रकार निरर्थक बातों को छोड़कर जो-कुछ सारभूत हो उसीको ग्रहण कर लेना चाहिए।

७

करत-करत अभ्यास के,
जड़मति होत सुजान ।

—वृन्द

८

पिदर चूं इल्मो मादर हस्त आमाल।
बिसाने कुरत्तुल-ऐनस्त अहवाल ॥

—शब्सतरी

—विद्या तेरा पिता और कर्म तेरी माता है। यह दोनों तुझे प्रिय होने चाहिए।

९

इल्म से जाना था कि कुछ जानेंगे।
जाना तो जाना कि न जाना कुछ भी ॥

—ज़ौक

: १३ :

स्वाध्याय

१

जलने में पुरानी लकड़ी और पीने में पुरानी शराब सबसे अच्छी होती है। विश्वसनीय व्यक्तियों में पुराने मित्र और पठनीय ग्रंथों में प्राचीन लेखकों के ग्रंथ सर्वोत्तम होते हैं।

—बेकन

२

रोज़ पांच घंटे चाहे कुछ भी पढ़ा करो, इससे तुम विद्वान् हो जाओगे।

—जॉनसन

३

बुरी पुस्तकों का पढ़ना ज़हर पीने के समान है।

—टॉलस्टॉय

४

पंडित केरी पोथियां, ज्यों तीतर का ज्ञान।
औरन सगुन बतावहीं, अपना फंद न जान ॥

—कबीर

५

कोई-न-कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते रहने से बुद्धि की वृद्धि होती है।

—मो.क. गांधी

६

जिसे पुस्तक पढ़ने का शौक है, वह सब जगह सुखी रह सकता है।

—मो.क. गांधी

७

मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूंगा क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहां ये होंगी, वहां आप ही स्वर्ग बन जायगा।

—बालगंगाधर तिलक

८

बहुत पढ़ने से हमारा दिमाग उन्नत नहीं होता, उलटे उसपर एक बोझ-सा लद जाता है। हां, अच्छे विचारों से दिमाग की तरक्की ज़रूर होती है और अच्छे काम करने से ही अच्छे विचार पैदा होते हैं।

—मो.क. गांधी

: १४ :

सुख

१

विद्यातपोभ्यां क्लेशहानिः ।

—योगसूत्र

—विद्या और तप से ही दुःख-निवृत्ति होती है।

२

सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम् ।
द्वयमन्योन्य-संयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्ककवत् ॥

—अध्यात्मरामायण

—सुख के भीतर दुःख और दुःख के भीतर सुख समाया रहता है। दोनों जल और कीचड़ की भांति आपस में मिले रहते हैं।

३

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्तते ॥

—सुख के पश्चात् दुःख और दुःख के पश्चात् सुख होता है। मनुष्य के सुख-दुःख पहिये की तरह घूमते रहते हैं।

४

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥ —महाभारत

—एकमात्र धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही परम

शांतिदायिनी है, एकमात्र विद्या ही परम तृप्ति देनेवाली है, एकमात्र अहिंसा ही परम सुखदायिनी है।

५

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः,
सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

—महाभारत

—नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेश में न रहना, सत्पुरुषों के साथ मेलजोल होना, अपनी कमाई से जीविका चलाना और निर्भय होकर रहना—ये छह मानव-लोक के सुख हैं।

६

अर्थागमो नित्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

—महाभारत

—नित्य धनागम, आरोग्य, प्यारी और प्रियवादिनी स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र तथा अर्थकारी विद्या—ये छह मानव-लोक के सुख हैं।

७

सुख-दुख यों संसार में सब काहू को होय।
ज्ञानी काटै ज्ञान से मूरख काटै रोय॥

—कबीर

८

दुख में सुमरिन सब करैं, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय॥

—कबीर

९

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख ऊपजै और ठगे दुख होय ।।

१०

कर्मप्रधान बिस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ।।

—तुलसी

११

काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता ।
निज कृत करम भोग सब भ्राता ।।

—तुलसी

१२

जो अति आतप व्याकुल होई ।
तरु-छायासुख जानइ सोई ।।

—तुलसी

१३

बिनु संतोष न काम नसाहीं ।
काम अछत सपनेहुं सुख नाहीं ।।

—तुलसी

१४

पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं । —तुलसी

१५

यों रहीम सुख होत है बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री अँखिया निरखि आँखिन को सुख होत ।।

१६

'समन' चहहु सुख देह को, तो छोड़ो ये चारि ।
चोरी, चुगली, जामिनी, और परायी नारि ।।

१७

हर बात में लज्ज़त है अगर दिल में मज़ा हो।

—अमीर

१८

मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपर कि आसाँ हो गईं।

—ग़ालिब

१९

ज़िंदगी करती ही रहती है मुसीबत पैदा।
वाख़ुदा इसमें भी कर लेते हैं लज्ज़त पैदा ।।

—अकबर

२०

प्रस्तुत सुख को इस प्रकार भोगो कि वह भावी सुखों को क्षति न पहुंचाये।

—सेनेका

२१

जिस प्रकार बिना भूख के खाया हुआ भोजन नहीं पचता, उसी प्रकार बिना दुःख के सुख भी नहीं पचता।

—मो० क० गांधी

: १५ :

दुःख

१

सुखाद्बहुतरं दुःखं जीविते नास्ति संशयः। **—महाभारत**

—जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक है, इसमें संदेह नहीं।

२

अनिष्टसंप्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च।
मनुष्याः मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते चाल्पबुद्धयः ।।

—महाभारत

—अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने और इष्ट वस्तु के वियोग से थोड़ी बुद्धिवाले मनुष्य मानसिक दुःखों से जलने लगते हैं।

३

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णं,
अन्नक्षये वर्धति जाठराग्निः।
आपत्सु वैराणि समुल्लसन्ति,
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥

—घाव पर बार-बार चोट लगती है, अन्न की कमी होने पर भूख बढ़ जाती है, विपत्ति में बैर बढ़ जाते हैं—कहीं भी छिद्र अर्थात् दोष या कोई त्रुटि होने से नाना प्रकार के अनर्थ होते हैं।

४

कष्टं खलु मूर्खत्वं कष्टं खलु सर्वदा च दारिद्रयम्।
कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परान्नं च ॥

—मूर्खता और चिरदारिद्रय ये कष्ट हैं, लेकिन पराये घर में रहना और दूसरे का अन्न खाना ये महाकष्ट हैं।

५

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥

—महाभारत

—दूसरों से ईर्ष्या करनेवाले, घृणा करनेवाले, असंतोषी, क्रोधी, सभी बातों में शंका करनेवाले और दूसरे के धन से जीविका निर्वाह करनेवाले—ये छहो सदा दुःखी रहते हैं।

६

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी,
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा,
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥

—चाणक्य

—अत्यंत क्रोध होना, कटुवचन बोलना, निर्धनता, स्वजनों से वैर, नीचों का संग, असज्जन की सेवा करना—ये सब नरक में रहनेवालों के लक्षण हैं।

७

कान्तावियोगः स्वजनापमानो,
ऋणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ।
दारिद्रयकाले प्रियदर्शनं च,
विनाऽग्निना पञ्च दहन्ति कायम् ॥

—पत्नी का वियोग, स्वजनों का अपमान, ऋण का शेष रहना, बुरे स्वामी की सेवा करना, हीनावस्था में किसी स्नेही का दर्शन होना या मिलना—ये पांचों बिना आग के ही शरीर को जलाते हैं।

८

ग्रामे वासो नायको निर्विवेकः कौटिल्यानामेकपात्रं कलत्रम् ।
नित्यं रोगः पारवश्यश्च पुंसामेतत्सर्वं जीवतामेव मृत्युः ॥

—वाग्भट

—गांव में रहना, मूर्ख मालिक का होना, अपनी भार्या का कपटी होना, सदा व्याधि का रहना—यह सब जीवित पुरुषों का मरण ही है।

९

कुग्रामवासः कुजनस्य सेवा,
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या ।
मूर्खश्च पुत्रो विधवा च कन्या,
विनाऽग्निना संदहते शरीरम् ॥

—बुरे ग्राम का रहना, बुरे आदमी की सेवा, बुरा भोजन, क्रोधमुखी पत्नी, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या—ये सब आग के बिना ही शरीर को जलाते हैं।

१०

अनालोच्य व्ययंकर्त्ता अनाथः कलहप्रियः ।
आतुरः सर्वकार्येषु नरो दुःखैर्नियुज्यते ॥

—बिना विचारे ही खर्च करनेवाला, निस्सहाय, झगड़ालू और सब कामों में उतावली करनेवाला मनुष्य दुःख भोगता है।

११

व्यसनं प्राप्य यो मोहात्केवलं परिदेवयेत्।
क्रन्दनं वर्धयत्येव तस्यान्तं नाधिगच्छति ॥

—पंचतंत्र

—जो व्यक्ति दुःख को प्राप्त होकर मूढ़ता-वश केवल रोता है, उसका रोना ही बढ़ता है। वह उस दुःख का पार नहीं पाता।

१२

स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।

—स्वप्नवासवदत्ता

—बारबार स्मरण करने से दुःख नया होता जाता है।

१३

बाढ़े पाप बड़े किये, छोटे करत लजात।
'तुलसी' तापर सुख चहत, विधि पर बहुत रिसात ॥

१४

जद्यपि जग दारुन दुख नाना।
सबतें कठिन जाति अपमाना ॥

—तुलसी

१५

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहिं विधाता ॥

—तुलसी

१६

रहिमन बिपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हितु-अनहितु या जगत में जानि परत सब कोय ॥

१७

गुनीजनन के हृदय को बेधत है सो कौन !
असमझवार सराहिबो समझवार को मौन ॥

१८

'समन' पराये बाग में, दाख तोरि खर खात ।
अपना कछू न बीगरै, असही सही न जात ॥

१९

दुःख भगवान् का आशीर्वाद है ।

—ईसा

२०

यह आश्चर्य देखो—मेरे दुःख का एक भाग—प्रधान भाग मेरी सुख पाने की इच्छाओं में ही है । मुझे यह एक नवीन बात जान पड़ी कि सुख पाने की इच्छा का ही अर्थ है—दुःख ।

—खलील जिब्रान

२१

उस दुःख से बढ़कर कोई दूसरा दुःख नहीं है जो व्यक्त न किया जा सके ।

—लांगफ़ेलो

२२

संसार के एहसान के भार से अपने दुःख का भार हलका है ।

—शेख सादी

२३

तबीबों[1] से मैं क्या पुछूं इलाजे दर्देदिल अपना ।
मरज़ जब जिंदगी खुद हो तो उसकी फिर दवा क्या है !!

—अकबर

[1] चिकित्सक

२४

हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम ।
वो जुल्म भी करते हैं तो चर्चा नहीं होती ।।

—अकबर

२५

मेरी घुट-घुट के हसरतें मर गईं ।
मैं उन हसरतों का मजार हूं ।।

—बहादुरशाह जफ़र

२६

थमते-थमते थमेंगे आंसू,
ये रोना है कुछ हंसी नहीं है ।

—मीर

२७

गुलशनपरस्त हूं मुझे गुल ही नहीं नसीब ।
कांटों से भी निबाह किये जा रहा हूं मैं ।।

: १६ :
प्रेम

१

हृदयंत्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् । —भवभूति

—परस्पर प्रेम के रहस्य को हृदय ही जान सकता है।

२

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ।

—गुणों का आधार प्रेम होता है, वस्तु विशेष नहीं।

३

दूरस्थोऽपि न दूरस्थः यो यस्य मनसि स्थितः ।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः ।।

—चाणक्य

—जो जिसके चित्त में बसता है वह उससे दूर होते हुए भी दूर नहीं रहता—निकट ही जान पड़ता है। इसके विपरीत, जो जिसके चित्त में नहीं रहता वह समीप होते हुए भी दूर ही जान पड़ता है।

४

कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रिय एव सः।
अनेकदोषदुष्टोऽपि कायः कस्य न वल्लभः॥

—जो प्रिय है वह कितने भी अपराध करे, तो भी प्रिय ही बना रहता है। अनेक दोषों से दूषित होने पर भी अपना शरीर किसको प्रिय नहीं लगता।

५

द्वेष्यो न साधुर्भवति मेधावी न पंडितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव हि॥

—महाभारत

—जिस व्यक्ति से द्वेष हो जाता है वह न साधु जान पड़ता है, न विद्वान् और न बुद्धिमान्। जिससे प्रेम होता है उसके सभी कार्य शुभ और शत्रु के सभी कार्य अशुभ प्रतीत होते हैं।

६

अन्यमुखे दुर्वादः स्वप्रियवदने तदेव परिहासः।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः सोऽगुरुभवो धूपः॥

—शुक्र

—जो बात दूसरे के मुख से निंदा या गाली समझी जाती है, वही अपने प्रियजन के मुख से कही जाने पर हँसी-मजाक जान पड़ती है। साधारण लकड़ियों का धुआं धुआं ही माना जाता है, लेकिन वही जब अगर की लकड़ी से निकलता है तो धूप समझा जाता है।

७

अति चिरं निवासेन पियो भवति अप्पियो।

—जातक

—चिरकाल तक साथ रहने से प्रिय भी अप्रिय हो जाता है।

८

साथ रहने से चाहे मनुष्य हो या पशु हृदय में प्रेम उत्पन्न ही हो जाता है।

—जातक

९

बिना प्रीति का मानवा कहीं ठौर ना पावै।

—कबीर

१०

राम बुलावा भेजिया कबिरा दीन्हा रोय।
जो सुख प्रेमी संग में सो वैकुण्ठ न होय॥

११

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।

—कबीर

१२

प्रेम-गली अति सांकरी तामें दो न समाहिं।

—कबीर

१३

सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मझार।
कपट सनेही आंगने, जानु समुंदर पार॥

—कबीर

१४

साईं का घर दूर है जैसे पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम-रस गिरै तो चकनाचूर॥

—कबीर

१५

प्रीतम को पतियां लिखूं, जो कहुं होय बिदेस।
तन में मन में नयन में ताको कहा संदेश॥

—कबीर

१६

पात झरंते इमि कहैं, सुनु तरुवर बनराय।
अबके बिछुरे कब मिलैं, दूर परैंगे जाय॥

—कबीर

१७

जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।

—तुलसी

१८

जाने बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति[1] होइ नहिं प्रीती॥

—तुलसी

१९

सुर-नर-मुनि सबकर अस रीती।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

—तुलसी

२०

प्रेम बदौं प्रह्लादहिं को जिन।
पाहन तें परमेस्वर काढ़े॥

—तुलसी

२१

आवत ही हरषे नहीं, नैनन नहीं सनेह।
'तुलसी' तहां न जाइये, कंचन बरसे मेह॥

२२

अंसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई

—मीरां

---

[1] विश्वास

२३

प्रेम-प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो मुरझि न जाय॥

—रहीम

२४

रहिमन मनहिं लगाय के देखि लेहु किन कोइ।
नर को बस करिबो कहा नारायण बस होइ॥

२५

कहा करौं बैकुंठ लै, कल्पवृक्ष की छांह।
रहिमन ढांक सुहावनो जो प्रीतम गल बांह॥

२६

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत-होत ही होय॥

२७

रहिमन खोजो ऊख में जहां रसन की खानि।
जहां गांठ तहं रस नहीं, यही प्रीति की हानि॥

२८

यहि आसा अटक्यो रह्यो अलि गुलाब के मूल।
ह्वैं हैं बहुरि बसंत-ऋतु इन डारन वे फूल॥

—बिहारी

२९

निकट रहे आदर घटै, दूरि रहे दुख होय।
'सम्मन' या संसार में, प्रीति करै जनि कोय॥

३०

स्वामी हम-तुम एक हैं कहन-सुनन को दोय।
मन से मन को तोलिये कबहु न दो मन होय॥

—रसनिधि

३१

प्रीति-पयोनिधि में धंसि के,
हंसि के कढ़िबो हँसी-खेल नहीं फिर ।

—पद्माकर

३२

यह प्रेम को पंथ कराल महा,
तरवार की धार पै धावनो है ।

—बोधा

३३

जिसने दिल खोया उसी को कुछ मिला ।
फायदा देखा इसी नुकसान में ।।

—दाग

३४

लुत्फ क्या है हर किसू की चाह के साथ ।
चाह वह है जो हो निबाह के साथ ।।

—मीर

३५

मजा है दिल के खोने का इधर खोया उधर पाया ।

३६

उनके मिलने का तरीका,
अपने खो जाने में है ।

३७

नहीं जो खार से डरते वही उस गुल को पाते हैं ।

३८

समाया है जब से तू नजरों में मेरी ।
जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है ।।

३९

शायद इसीको इश्क कहते होंगे 'गालिब'।
सीने में जैसे कोई दिल को मला करे।।

४०

इश्क पर जोर नहीं, है यह वो आतिश[1] 'गालिब'।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।।

४१

कुछ नतीजा न सही इश्क़ की उम्मीदों का।
दिल तो बढ़ता है, तबीयत तो बहल जाती है।।

—अकबर

४२

उनके देखे से जो आ जाती है मुंह पै रौनक़।
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।।

—ग़ालिब

४३

मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ जीने और मरने का।
उसीको देखकर जीते हैं, जिस काफ़िर पै दम निकले।।

—ग़ालिब

४४

कहते हैं जिसको इश्क खलल है दिमाग़ का।

—ग़ालिब

४५

इश्क ने 'गालिब' निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के।।

---

[1] आग

४६

मुहब्बत नहीं, आग से खेलना है ।
लगाना पड़ेगा बुझाना पड़ेगा ॥

—आरज़ू

४७

रंग चेहरे का ज़ाफ़रानी है ।
आशिक़ी की यही निशानी है ॥

—अमीन

४८

इश्क़ सुनते थे जिसे हम वोह यही है शायद ।
ख़ुदबख़ुद दिल में है इक शख़्स समाया जाता ॥

—हाली

४९

नहीं भूलता उसकी रुख़सत का वक़्त ।
वो रह-रह के मिलना बला हो गया ॥

—हाली

५०

ऐ इश्क़ ! तूने अक्सर क़ौमों को खाके छोड़ा ।
जिस घर से सर उठाया उसको बिठाके छोड़ा ॥

—हाली

५१

इश्क़ के घाट किसको संभलते देखा ।
अच्छे-अच्छों को यहां पांव फिसलते देखा ॥

५२

इश्क़ नाज़ुक मिज़ाज है बेहद ।
अक़्ल का बोझ उठा नहीं सकता ॥

—अकबर

५३

आशिकी का हो बुरा इसने बिगाड़े सारे काम ।
हम तो 'ए. बी' में रहे, अग़यार बी. ए. हो गये ॥

—अकबर

५४

यों कहो मिल आऊं उनसे, लेकिन 'अकबर' सच यह है ।
दिल नहीं मिलता तो मिलने का मज़ा मिलता नहीं ॥

५५

बनने बिगड़ने रूठने हँसने में लुत्फ़ है ।
जबतक कि छेड़छाड़ न हो कुछ मज़ा नहीं ॥

५६

बशीरीं जबानी व लुत्फ़ो ख़ुशी ।
तवानी कि पीले बमूये कशी ॥

—शेख़ सादी

—मीठी ज़बान, प्रेम और ख़ुशी से तू हाथी को एक बाल से खींच सकता है ।

५७

प्रेम मिलने के अभाव में ही सुसंपूर्ण और व्यथा में ही मधुर है ।

—शरच्चन्द्र

५८

नित्य दर्शन होने के कारण सूर्य की ओर कोई ध्यान नहीं देता; जाड़े में उसके यदा-कदा निकलने पर सब स्वागत करते हैं ।

—एक फ़ारसी कवि

५९

याद रखना भी मिलन का एक रूप है ।

—ख़लील जिब्रान

६०

जो प्रेम नित्य नवीन नहीं होता रहता वह एक आदत और बंधन बन जाता है।

—खलील जिब्रान

६१

प्रेम और संदेह दोनों एक साथ एक हृदय में नहीं रह सकते।

—खलील जिब्रान

६२

प्रेम के मार्ग में चालाकी बहुत बुरी चीज है। —रूमी

: १७ :

मित्रता

१

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना,
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥

—दोपहर के पहले की छाया प्रारंभ में बड़ी और फिर धीरे-धीरे छोटी होने लगती है; वही दशा दुष्टों की मित्रता की है। सज्जनों की मित्रता दोपहर के बाद की छाया के समान होती है जो आरंभ में छोटी होती है, लेकिन धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है।

२

सन्धिः सद्भिर्न जीर्यते। —महाभारत

—सत्पुरुषों की मित्रता कभी जीर्ण नहीं होती।

३

उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम्।
विभावयितुमृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम्॥

—दण्डी

—सूर्य उदय होते ही कमलों को श्री प्रदान करता है; वह जगत् को यह दिखाता है, कि मित्र पर अनुग्रह करना ही संपत्ति का फल है।

४

आपत्काले तु संप्राप्ते, यन्मित्रं मित्रमेव तत् ।
वृद्धिकाले तु संप्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद्भवेत् ॥

—पंचतंत्र

—दुर्दिन में जो साथ दे वही सच्चा मित्र है। समृद्धि की दशा में तो दुर्जन भी मित्र बन जाते हैं।

५

पंडितो हि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः ।

—पंचतंत्र

—मूर्ख हितैषी से बुद्धिमान् शत्रु ही अच्छा है।

६

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुंभं पयोमुखम् ॥

—चाणक्य

—जो मित्र सामने तो मीठी-मीठी बातें करे और पीठ-पीछे काम बिगाड़े उसको उस घड़े की भांति त्याग देना चाहिए जिसके मुख पर तो दूध और भीतर विष भरा रहता है।

७

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥

—चाणक्य

—उत्सव, विपत्ति, दुर्भिक्ष, राज्य-विप्लव में तथा राजद्वार—न्यायालय या राजसभा—और श्मशान में भी जो साथ दे वही सच्चा बंधु है।

८

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च ।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम् ॥

—रोगी, निर्धन, परदेशी और शोकपीड़ित मनुष्य के लिए मित्र का दर्शन औषधरूप है।

९

विवादो धनसम्बन्धो याचनं स्त्रीषु संगतिः।
आदानमग्रतःस्थानं मैत्रीभंगस्य हेतवः॥

—वाद-विवाद करना, लेन-देन करना, मांगना, मित्र के घर की स्त्रियों से मिलना-जुलना, हर काम में अगुआनी करना—इन सबसे मित्रता टूट जाती है।

१०

"जो स्वयं खाली हाथ आकर मित्र के घर से कुछ-न-कुछ ले ही जाता है, जिसके पास बस बड़ी-बड़ी बातें ही हैं, जो सदा हां-में-हां मिलाता है, जो नरक का साथी है—यह चार प्रकार के मित्र अमित्र ही हैं और दूर से ही त्याज्य हैं।"

—जातक

११

सोना, सज्जन, साधुजन टूटि जुटैं सौ बार।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार॥

—कबीर

१२

सज्जन ऐसा कीजिये ढाल सरीखा होय।
दुख में तो आगे रहै सुख में पाछे होय॥

१३

चंदन की चुटकी भली गाड़ी भरा न काठ।
चतुर तो एकहि भला, मूरख भले न साठ॥

—कबीर

१४

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।

कहत सुदामा सुनु सुंदरि जिय मिलन न हरि बिसरै ॥
और मित्र ऐसे कुसमय महं कत पहिचान करै ।
बिपति परे कुसलात न बूझैं बात नहीं उचरै ॥

—सूरदास

१५

आपतिकाल परखिये चारी ।
धीरज धरम मित्र अरु नारी ॥

—तुलसी

१६

निज दुख गिरि-सम रज करि जाना ।
मित्र के दुख रज मेरु समाना ॥

—तुलसी

१७

'तुलसी' तीनि प्रकार तें हित-अनहित पहिचानि ।
परबस परे, परोस बसि, परे मामला जानि ॥

१८

कहि रहीम सम्पत्ति सगे, बनत बहुत बहु रीत ।
बिपति-कसौटी जे कसे, तेई साचे मीत ॥

१९

क्यों रहीम खोजत नहीं गाढ़े दिन को मित्त !

२०

हित-अनहित तब जानिये जा दिन अटके काम ।

—रहीम

२१

रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय ।

२२

कह गिरिधर कबिराय आप जब बनैं न बैरी ।
सर्व जगत हो मित्र कोऊ फिर रहै न बैरी ॥

२३

पाए दर जंज़ीर पेशे दोस्तां ।
बेह कि बा बेगानगां दर बोस्तां ॥ —शेख़ सादी

—"मित्रों के सामने पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई अच्छी हैं, लेकिन बेगानों के साथ फुलवाड़ी का निवास भी बुरा है।"

२४

जब मिले तो मित्र का आदर करो, पीठ-पीछे प्रशंसा करो और आवश्यकता पड़ने पर निस्संकोच सहायता करो।

—अरस्तू

२५

जिसके बहुत-से मित्र हैं, निश्चय जानो उसके एक भी मित्र नहीं हैं।

—अरस्तू

२६

हे भगवान, मुझे ऐसा मित्र दो जो मेरी ग़लतियां बता सके, नहीं तो शत्रु ही यह काम करेंगे। **—विदेशी कहावत**

२७

कायर मित्र से बैरी वीर अच्छा है। **—थैकरे**

२८

विदाई से बढ़कर कोई दुःख नहीं है और नई मैत्री से बढ़कर कोई आनंद नहीं है। **—चीनी कहावत**

: १८ :

संगति

१

कुलीनैः सह सम्पर्कं पंडितैः सह मित्रताम्।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो नावसीदति॥

—कुलीन व्यक्तियों के साथ संबंध, बुद्धिमानों के साथ मित्रता और स्वजातीय मनुष्यों के साथ मेल रखनेवाला मनुष्य कभी दुःख नहीं पाता।

२

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

——महाभारत

——तुच्छ बिचारवालों की संगति से मनुष्य की बुद्धि तुच्छ हो जाती है, समान श्रेणी के मनुष्यों की संगति से वह ज्यों-की-त्यों बनी रहती है और उच्च विचारवालों के संपर्क से वह उत्कर्ष को प्राप्त होती है ।

३

यस्य न ज्ञायते वीर्यं न कुलं न विचेष्टितम् ।
न तेन संगतिं कुर्य्यादित्युवाच वृहस्पतिः ॥

——वृहस्पति का मत है कि जिसके बल, कुल और कार्य का पता न हो, उसका साथ न करे ।

४

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥

——दुष्ट मनुष्य यदि विद्वान् हो तो भी उसका परित्याग कर देना चाहिए । मणि-युक्त सर्प क्या भयंकर नहीं होता !

५

श्रुतं कृतधियां संगाज्जायते विनयः श्रुतात् ।
लोकानुरागो विनयान्न किं लोकानुरागतः ॥

——विद्वानों के सत्संग से शास्त्र-ज्ञान, शास्त्र-ज्ञान से विनय और विनय से लोकानुराग प्राप्त होता है । लोकानुराग से फिर क्या नहीं प्राप्त हो सकता !

६

"सत्पुरुषों का दर्शन करना अच्छा है, सत्पुरुषों की संगति सदा सुखकर है और मूर्खों का दर्शन न होने से ही मनुष्य सदा सुखी रहता है ।"

——जातक

७

न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे॥

—धम्मपद

—न दुष्ट मित्र की संगति करे और न अधम पुरुष की। कल्याणकारी मित्र और उत्तम पुरुष की ही संगति करे।

८

संसार-मार्ग में मनुष्य को अपने से श्रेष्ठ अथवा अपने जैसा साथी न मिले तो वह दृढ़तापूर्वक अकेला ही चले, परंतु मूर्ख की संगति कभी न करे।

—धम्मपद

९

जो मनुष्य अपने दोष दिखानेवाले को गुप्त निधि दिखानेवाले के समान समझता है, जो आत्मसंयम के समर्थक, मेधावी पंडित की संगति करता है उसका अहित नहीं होता—सदा कल्याण ही होता है।

—धम्मपद

१०

पापाचारी दुष्टों का त्याग न करके उनके साथ मिले रहने से निरपराध सज्जनों को भी उनके समान ही दंड भोगना पड़ता है—जैसे, सूखी लकड़ी के साथ गीली लकड़ी भी जल जाती है। अतः दुष्ट पुरुषों का कभी संग न करे।

—व्यास

११

झुकनेवाले के सामने झुके, संगति चाहनेवाले के साथ संगति करे, जो अपने काम आता हो उसका काम करे, अनर्थ चाहनेवाले का काम न करे जो संगति करना न चाहता हो उसकी संगति न करे। छोड़नेवाले को छोड़ दे, उससे स्नेह न करे। जिसका चित्त विमुख हो गया हो उसकी संगति न करे। जिस प्रकार पक्षी एक वृक्ष को फलरहित जानकर दूसरे वृक्ष को ढूंढ़ते

है, उसी प्रकार दूसरे को ढूंढे; संसार बड़ा है। —जातक

१२

कबिरा संगति साधु की हरै और की व्याधि।
संगति बुरी असाधु की आठौ पहर उपाधि॥

१३

कबिरा संगति साधु की ज्यों गंधी का बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौ भी बास-सुबास॥ —कबीर

१४

बिनु सतसंग बिबेक न होई।

—तुलसी

१५

गगन चढ़इ रज पवन-प्रसंगा।

—तुलसी

१६

धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिय पुरान मंजु मसि सोई॥

—तुलसी

१७

खल मंडली बसहु दिन राती।
सखा धर्म निबहै केहि भांती॥

—तुलसी

१८

कबि-कोबिद गावहिं अस नीती।
खल सन कलह न भल नहिं प्रीती॥
उदासीन नित रहिय गुसाईं।
खल परिहरिय स्वान की नाईं॥

—तुलसी

१९

कहु रहीम कैसे निभै, बेर-केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥

२०

दुरजन की करुना बुरी, भलो सजन को त्रास।
सूरज जब गरमी करै, तब बरसन की आस॥

—वृंद

: १९ :

सज्जन, महापुरुष

१

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते,
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा॥

—चाणक्य

—जिस प्रकार घिसने, काटने, तपाने और पीटने—इन चार उपायों से स्वर्ण की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कर्म—इन चारों से मनुष्य की परीक्षा होती है।

२

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

—भर्तृहरि

—विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में क्षमा, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम,

यश में रुचि, शास्त्र में अनुराग—ये विशेषताएं महात्माओं में स्वभाव-सिद्ध होती हैं।

३

मनस्यन्यद्वचस्यन्यद्कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्॥

—दुष्ट लोगों के मन में कुछ, वाणी में कुछ और कर्म में कुछ और ही होता है, पर सज्जनों के मन, वचन और कर्म में एक ही भाव होता है। अर्थात् सज्जनों के मन में जैसा होता है वे वैसा ही कहते हैं और वैसा ही करते भी हैं।

४

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

—भवभूति

—लोकोत्तर महापुरुषों के चित्त को जानने में कौन समर्थ है! वह वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल होता है।

५

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

—उदारपुरुषों के लिए सारा संसार कुटुंब के समान है।

६

विवेकः सह सम्पत्त्या विनयो विद्यया सह।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं चिह्नमेतन्महात्मनाम्॥

विभव के साथ विवेक, विद्या के साथ विनय, प्रभुत्व के साथ विनम्रता का होना—यही सत्पुरुषों के लक्षण हैं।

७

सन्त्यज्य शूर्पवद्दोषान्गुणान्गृह्णाति पंडितः।
दोषग्राही गुणत्यागी पल्लोलीव हि दुर्जनः॥

—सुधी सज्जन सूप की तरह दोषों को त्यागकर गुणों को ग्रहण कर

लेता है। दुर्जन चलनी की तरह गुणों को त्यागनेवाला और दोषों को ग्रहण करनेवाला होता है।

८

क्षारं जलं वारिमुचः पिबन्ति,
तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति।
सन्तस्तथा दुर्जनदुर्वचांसि,
पीत्वा च सूक्तानि समुद्गिरन्ति॥

—बादल समुद्र का खारा जल पीता है और उसको मीठा बनाकर बरसा देता है। इसी प्रकार सज्जन भी दुर्जन के दुर्वचन सुनकर और सहकर उत्तर में सद्वचन ही बोलते हैं।

९

तुंगात्मनां तुंगतराः समर्थाः, मनोरथान्पूरयितुं न नीचाः।
धाराधरा एव धराधराणां, निदाघदाहं शमितुं न नद्यः।

—श्रेष्ठ पुरुषों के मनोरथों को पूर्ण करने में नीच नहीं श्रेष्ठपुरुष ही समर्थ होते हैं। पर्वतों के निदाघदाह को नदी-नद नहीं, मेघ ही शांत करते हैं।

१०

तुलसी संत सुअम्ब तरु फूलि फरहिं पर-हेत।
इततें ये पाहन हनत, उततें वे फल देत॥

—तुलसी

११

सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच॥

—तुलसी

१२

मधुकर-सरिस संत गुनग्राही।

—तुलसी

१३

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं ।
गिरि निज सीस सदा तृन धरहीं ॥

—तुलसी

१४

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं ।
पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥

—तुलसी

१५

संत उदय संतत सुखकारी ।
विश्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥

—तुलसी

१६

सिंहन के लहंड़े नहीं, हंसन की नहिं पांत ।
लालन की नहिं बोरियां, साधु न चलैं जमात ॥

—कबीर

१७

छमा बड़न को चाहिए छोटन को उतपात ।
कहा विष्णु को घटि गयो जो भृगु मारी लात ।

—रहीम

१८

हैं बिरले नर या जग में,
जो कहैं सो करैं जो करैं सो कहैं ना ।

—ग्वाल

१९

वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया ।
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया ॥

—हाली

: २० :

दुर्जन, कापुरुष

१

मुखं पद्मदलाकारं वाचा चन्दनशीतला ।
हृदयं क्रोधसंयुक्तं त्रिविधं धूर्त्तलक्षणम् ।।

—मुख कमलदल के समान, वाणी चंदन-जैसी शीतल और हृदय क्रोध से परिपूर्ण होना—यह तीन धूर्त के लक्षण हैं ।

२

अकरुणत्वमकारण - विग्रहः,
परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।। —भर्तृहरि

—निष्ठुरता, अकारण लड़ना-झगड़ना, पराये धन और परस्त्री की इच्छा करना, मित्रों और कुटुंम्बियों को न सहना—ये बातें दुर्जनों की स्वभाव-सिद्ध हैं ।

३

अतिमलिने कर्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः ।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ।

—सुबंधु

—अत्यंत मलिन कर्म में खलों की बुद्धि विशेष निपुण होती है । उल्लुओं के नेत्र अंधेरे में ही किसी वस्तु को देखने में समर्थ होते हैं । दूसरे शब्दों में—बुरे काम में बुरे आदमियों का ही दिमाग़ ज्यादा काम करता है । अंधेरे में उल्लुओं को ही अधिक सूझता है ।

४

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम् ।
अहो सुसदृशी चेष्टा तुलायष्टेः खलस्य च ।।

—पंचतंत्र

—थोड़े से ही ऊपर चला जाता है और थोड़े से ही नीचे आ जाता है। तराजू और दुष्ट का हाल एक-सा है।

५

कापुरुषः कुक्कुरश्च भोजनैकपरायणौ ।
लालितः पार्श्वमायाति वारितो न च गच्छति ॥

—कापुरुष और कुत्ता—ये दोनों बस खाने से ही मतलब रखते हैं; थोड़ा भी स्नेह दिखाने से पास आ जाते हैं और फिर हटाने से भी नहीं हटते।

६

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्,
अर्धोघटो घोषमुपैति नूनम् ।
विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वं,
गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति ॥

—भरा हुआ घड़ा शब्द नहीं करता, लेकिन आधा भरा हुआ बहुत शब्द करता है—छलकता है। इसी प्रकार विद्वान् एवं कुलीन पुरुष तो गर्व नहीं करते, लेकिन गुणहीन मनुष्य बहुत बक-बक करते हैं, दंभ दिखाते हैं।

७

सुपूरा स्यात्कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः ।
सुसन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥ —पंचतंत्र

—छोटी-मोटी नदी थोड़े ही जल से भर जाती है; मूषिका की अंजली थोड़े ही में भर जाती है; कापुरुष थोड़ा ही पाकर शीघ्र संतुष्ट हो जाता है।

८

दादू कथनी और कछु, करनी करैं कछु और।
तिनतैं मेरा जिउ जरै, जिनके ठीक न ठौर ॥

९

हंसा-बगुला एक-सा मानसरोवर माँहि।
बगा ढढोरे माछरी हंसा मोती खाँहि ॥ —कबीर

१०

बाना पहिरे सिह का, चलै भेंड़ की चाल ।
बोली बोलै स्यार की, कुत्ता खाया फाल ॥

—कबीर

११

निंदक एकहु मति मिलै, पापी मिलो हजार ।
इक निंदक के सीस पर, कोटि पाप को भार ॥

—कबीर

१२

दुरजन दरपन-सम सदा, करि देखो हिय दौर ।
सनमुख की गति और है, बिमुख भये कछु और ॥

—तुलसी

१३

नीच चंग-सम जानिये, सुनि, लखि तुलसीदास ।
ढील देत भुइं गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास ॥

१४

मन मलीन तन सुंदर कैसे ।
विष-रस भरा कनक घट जैसे ॥

—तुलसी

१५

बहुरि बंदि खलगण सति भाये ।
जे बिनु काज दाहिने बांये ॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी ।
परहित घृत जिनके मन माखी ॥
बचन बज्र जेहिं सदा पियारा ।
सहसनयन परदोष निहारा ॥

—तुलसी

१६

जहं कहुं निंदा सुनहिं पराई ।
हरषहिं मनहुं परी निधि पाई ॥
काहू कै जो सुनहिं बड़ाई ।
स्वांस लेहिं जनु जूड़ी आई ॥

—तुलसी

१७

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा ।
आपु सरिस सबहीं चह कीन्हा ॥

—तुलसी

१८

ऊंच निवास नीच करतूती ।
देखि न सकहिं पराइ विभूती ॥

—तुलसी

१९

जेहि तें नीच बड़ाई पावा ।
सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा ॥

—तुलसी

२०

क्षुद्र नदी भरि चलि उतिराई ।
जिमि थोड़े धन खल बौराई ॥ —तुलसी

२१

जो रहीम छोटे बढ़ैं, बढ़त करत उतपात ।
प्यादे सों फ़रज़ी भयो, तिरछो-तिरछो जात ॥

२२

ओछे नर के पेट में रहै न मोटी बात ।
आध सेर के पात्र में कैसे सेर समात ॥ —वृंद

२३

क्या हँसी आती है मुझको हज़रते इन्सान पर ।
फ़ेलबद[1] तो खुद करें, लानत[2] धरें शैतान पर ।।

—इंशा

२४

शैतान की सफलताएं उस समय सबसे महान होती हैं जब वह अपने अधरों पर ईश्वर का नाम लेकर प्रकट होता है ।

—मो. क. गांधी

: २१ :

पंडित के लक्षण

१

यस्य कार्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पंडित उच्यते ।।

—महाभारत

—जिसके कार्य में सर्दी-गर्मी, भय-प्रीति, संपन्नता अथवा दरिद्रता से कोई विघ्न-बाधा नहीं पहुंचती, वही पंडित कहलाता है ।

२

पाठकाः पठितारश्च ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः ।।

—पढ़ने-पढ़ानेवाले और शास्त्रचिंतक—ये सभी व्यसनी और मूर्ख हैं । वास्तव में, जो क्रियावान् है, वही पंडित है ।

३

प्रस्ताव-सदृशं वाक्यं स्वभाव-सदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्ति-समं कोपं यो जानाति स पंडितः ।।

—हितोपदेश

---

[1] दुष्कर्म [2] धिक्कार

—जो मनुष्य प्रसंग के अनुसार बोलना, स्वभाव के अनुसार प्रिय बनना और अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जानता है, वही पंडित है।

४

सत्यं तपोज्ञानमहिंसता च,
विद्वत्प्रणामश्च सुशीलता च।
एतानि यो धारयते स विद्वान्,
न केवलं यः पठते स विद्वान्॥

—केवल पढ़-लिख लेने, अर्थात् शिक्षित होने से ही कोई विद्वान् नहीं होता। जो इन गुणों को—सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों के प्रति श्रद्धा और सुशीलता—धारण करता है, वही सच्चा विद्वान् है।

५

मंत्रिणां भिन्नसंधाने भिषजां सन्निपातके।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा सुस्थे को वा न पंडितः॥

—दो विरोधियों में मेल करा देने में मंत्रियों या सलाहकारों की, सन्निपात रोग के उपचार में वैद्यों की बुद्धि देखी जाती है। अच्छी दशा में तो कौन बुद्धिमान् नहीं है—अर्थात् सभी बड़े चतुर बनते हैं।

६

मूर्ख आदमी अपनेको बुद्धिमान् समझता है, लेकिन बुद्धिमान् अपने आपको सदा मूर्ख समझने की चेष्टा करता है।

—शेक्सपियर

७

बुद्धिमान् मनुष्य अपने अनुभवों से तथा अधिक बुद्धिमान दूसरों के अनुभवों से सीखता है।

—चीनी सुभाषित

: २२ :

मूर्ख के लक्षण

१

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा ।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते ॥

—अभिमानी होना, दुर्वचन बोलना, हठ करना, अप्रिय बात कहना, दूसरे की बात न मानना—ये पांच मूर्ख मनुष्य के लक्षण हैं ।

२

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥

—महाभारत

—बिना पढ़े ही अभिमान करनेवाले, दरिद्र होकर भी बड़े-बड़े इरादे रखनेवाले और बिना कामकाज के धन-प्राप्ति की कामना करनेवाले को पंडित लोग मूर्ख कहते हैं ।

३

मूर्खो मूर्खमपि दृष्ट्वा चन्दनादतिशीतलः ।
यदि पश्यति विद्वांसं मन्यते पितृघातकम् ।

—मूर्ख को देखकर मूर्ख चंदन से भी अधिक शीतल हो जाता है। लेकिन जब वह किसी विद्वान् को देखता है तो उसे अपने पिता का घातक—अर्थात् महाबैरी समझता है ।

४

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।
पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम् ॥

—मूर्ख को उपदेश देना उसके क्रोध को बढ़ाना है, शांत करना नहीं। सांप को दूध पिलाना केवल उसके विष को बढ़ाना है ।

५

"यदि मूर्ख आदमी अपनेको मूर्ख समझे तो उतने अंश में तो वह बुद्धिमान्

ही है। असली मूर्ख वह है जो मूर्ख होते हुए भी अपने-आपको बुद्धिमान् समझता है।"

—धम्मपद

६

मूर्ख आदमी संपत्ति को पाकर उससे अपनी ही हानि कर लेता है।

—जातक

७

यावदेव अनत्थाय ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्स विपातयं॥

—धम्मपद

—मूर्ख-द्वारा उपार्जित समस्त ज्ञान उसके लिए अनर्थकारी होता है। वह उसके शुभ गुणों को नष्ट करता है और उसके मस्तिष्क की चेतना का भी नाश कर देता है।

८

अपस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो व जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पंजा तस्स न वड्ढति॥

—धम्मपद

—अज्ञानी मनुष्य बैल की तरह बढ़ता है। उसका मांस तो बढ़ता है, लेकिन उसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि नहीं बढ़ती।

९

पूरति बालो पापस्स थोक-थोकम्पि आचिनं।

—धम्मपद

—मूर्ख मनुष्य थोड़ा-थोड़ा करके पाप का घड़ा भर लेता है।

१०

मूर्ख आदमी अप्राप्य वस्तु को पाने की इच्छा करता है, साधु-सन्यासियों में सबसे बड़ा बनना चाहता है, घर में सबका स्वामी होना चाहता है और दूसरे

कुलों में अपने लिए आदर-सत्कार की कामना करता है । वह चाहता है कि गृहस्थ और सन्यासी सभी उसके उचित एवं अनुचित कार्यों को मानें और सभी बातों में उसका अनुमोदन करें । इस प्रकार के संकल्प करनेवाले मूर्ख की इच्छाएं बढ़ती हैं और अभिमान भी बढ़ता ही जाता है ।

—धम्मपद

११

'पुत्र मेरा है', 'धन मेरा है'—इस प्रकार की बातों को सोचकर मूर्ख मनुष्य दुःखी होता है । जब वह स्वयं या उसका शरीर ही अपना नहीं तो कहां पुत्र ! और कहां धन !

—धम्मपद

१२

फूलहिं फरहिं न बेंत जदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरखहृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरंचि-सम ।।

—तुलसी

१३

मूरख आगे कबित्त पढ्यो जनु,
भैंस के आगे मृदंग बजायो ।

—बीरबल

१४

एक मूर्ख भी अकेला ऐसा प्रश्न कर सकता है जिसका चालीस बुद्धिमान भी मिलकर उत्तर नहीं दे सकते ।

—फ्रेंच लोकोक्ति

१५

अशिक्षित मूर्ख से शिक्षित मूर्ख अधिक भयंकर होता है ।

—मोलियर

: २३ :

शूर-वीर

१

विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि—
विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः ॥
तथाप्येको रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं ।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

—लंका को जीतना था, समुद्र को पैदल पार करना था, रावण बैरी था, रणभूमि में बानर ही सहायक थे, फिर भी अकेले राम ने समस्त राक्षस-कुल का संहार कर डाला। महापुरुषों की कार्यसिद्धि साधनों पर नहीं, उनके आत्मबल पर निर्भर करती है।

२

तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो,
मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
स्वभाव एवोन्नतचेतसामयं,
महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम् ॥

—पवन मृदु, क्षुद्र तथा सब प्रकार से झुके हुए तृणों का उन्मूलन नहीं करता। श्रेष्ठ चित्तवालों का यह स्वभाव ही है कि बड़े लोग बड़ों से ही विक्रम दिखाते हैं।

३

द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः।

—रघुवंश

—यदि वायु से वृक्ष और पर्वत दोनों ही चलायमान हो जायं तो उनमें फिर अंतर ही क्या रहेगा।

४

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। —रघुवंश

—तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती।

५

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचंड - मृगराज - वधेऽपि दक्षाः ।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्प-दर्प-दलने विरला मनुष्याः ॥ —भर्तृहरि

—मदोन्मत्त हाथी के मस्तक को विदीर्ण करनेवाले शूरवीर इस पृथ्वी पर बहुत हैं। प्रचण्ड सिंह का वध करने में भी कितने ही समर्थ हैं। किंतु बलवानों के आगे हम हठ करके—दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि कामदेव के दर्प को चूर करनेवाले मनुष्य विरले ही मिलेंगे।

६

जरहिं पतंग बिमोह-बस, भार बहहिं खरवृंद ।
ते नहिं सूर कहावहीं, समुझि देखु मतिमंद ॥

—तुलसी

७

सूर समर करनी करहिं, करि न जनावहिं आप ।
बिद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप ॥

—तुलसी

८

तुलसी बांह सपूत की, जो धोखेहु छुइ जाय ।
आपु निभावैं अंत लौं, लरिकन सों कहि जाय ॥

९

तुलसी तृण जल-कूल को निरबल निपट निकाज ।
कै राखै कै संग चलै बांह गहे की लाज ॥

१०

इंद्रजालि कहं कहिय न बीरा ।
काटइ निज कर सकल सरीरा ॥

—तुलसी

११

मर्द सीस पर नवै, मर्द बोली पहिचानै ।
मर्द खिलावै खाय, मर्द चिंता नहिं मानै ॥
मर्द देय अरु लेय, मर्द को मर्द बचावै ।
गाढ़े संकरे काम, मर्द के मर्द आवै ॥
पुनि मर्द उनहिं को जानिये, दुख-सुख साथी दर्द के ।
बैताल कहै विक्रम सुनो लच्छन हैं ये मर्द के ॥

१२

सूर को सूर सती को सती,
अरु 'दास' जती को जती पहिचानै ।

१३

पत्थर की वह चट्टान जो कमजोर आदमियों की राह का रोड़ा होती है, शक्तिशालियों के लिए सफलता की सीढ़ी बन जाती है ।

—कार्लाइल

१४

प्रत्येक महत्कार्य में सैनिकों की संख्या ही सबकुछ नहीं है, उसकी कोई गिनती नहीं है, परंतु सैनिकों के निर्माण में प्रयुक्त गुण-विशेष का महत्व है और वही निर्णायक शस्त्र होता है । संसार के सबसे बड़े व्यक्ति सदा अकेले ही अडिग खड़े रहे ।

—मो० क० गांधी

: २४ :

जय-पराजय

१

सत्यमेव जयति नानृतम् ।

—मुण्डकोपनिषद्

—सत्य ही विजयी होता है, मिथ्या नहीं ।

२

न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः ।
यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मणैवोद्यमेन च ॥

—महाभारत

—विजयाभिलाषी लोग बल-वीर्य से वैसी या उतनी विजय नहीं प्राप्त कर सकते जैसी कि सत्य, उदारता, धर्म और उद्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

३

नयेनांकुरितं शौर्यं जयाय न तु केवलम् ।
अन्ययुक्तं विषं युक्तं पथ्यं स्यादन्यथा मृतिः ॥

—केवल वीरता से नहीं, नीतियुक्त वीरता से जय होती है। अन्य वस्तु के साथ मिलाकर विष खाने से लाभ होता है, लेकिन केवल विष खाने से मृत्यु होती है।

४

यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीः सर्वतोमुखी ।

—शुक्र

—जहां युक्ति-शक्ति—दोनों से काम लिया जाता है वहां सब ओर से सफलता मिलती है।

५

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ।

—कालिदास

—कोरी नीति कापुरुषता है और कोरी शक्ति हिंस्र पशु की चेष्टा के समान है।

६

असहायः समर्थोऽपि तेजस्वी किं करिष्यति ।
निर्वाते ज्वलितो वह्निः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥

—पंचतंत्र

—सामर्थ्यवान् तेजस्वी पुरुष भी यदि अकेला हो तो क्या कर सकता है। वायु-रहित स्थान में प्रज्वलित अग्नि अपने-आप शांत हो जाती है।

७

अथ ये सहिताः वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान्सहन्तेऽन्योन्य संश्रयात्॥

—महाभारत

—जो वृक्ष साथ-साथ संघ-रूप में खड़े रहते हैं वे एक-दूसरे के सहारे तेज आंधी के झोंके भी झेल लेते हैं—उखड़ते नहीं।

८

बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुञ्जयः।
वर्षधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते॥

—चाणक्य

—बहुत-से प्राणियों का समह शत्रु को जीत लेता है। तृणों के समूह—छप्पर से मूसलाधार वर्षा का निवारण हो जाता है।

९

न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा।

—महाभारत

—बलवान् मनुष्यों को भी कभी शत्रु की उपेक्षा न करनी चाहिए, चाहे वह निर्बल ही क्यों न हो।

१०

श्रेयसा निर्जितं वरम्।

—महाभारत

—बड़े से हारना भी अच्छा है।

११

अहो दुरन्ता बलवद्-विरोधिता। —भारवि

—अपने से अधिक शक्तिशाली के साथ बैर करना परिणाम में दुःख-दायक होता है।

१२

सर्वत्र जयमन्विच्छेत् पुत्रादिच्छेत्पराजयम् ।

--मनुष्य सर्वत्र जय की, लेकिन अपने पुत्र से पराजय की ही इच्छा करे।

१३

पुत्रात्पराजयो द्वितीयं पुत्रजन्म । **--श्रुति**

--पुत्र से पराजय होना मानों दूसरा पुत्र-जन्म है।

१४

जो तेरे सामने झुकता है, उसके सामने तू भी झुक जा।

--शेख़ सादी

१५

अपनेहि पाप जरहिं अपकारी ।

--तुलसी

१६

तुलसी तहां न जीतिये, जहं जीते हू हार।

१७

जूझे तें भल बूझिबो, भली जीति तें हार।
डहके[1] ते डहकाइबो,[2] भलो जो करिअ बिचार ॥

--तुलसी

१८

निबल जानि कीजै नहीं, कबहुंक वाद-विवाद।
जीते कछु सोभा नहीं, हारे निंदावाद ॥

--वृंद

१९

सबसे उत्तम बदला क्षमा कर देना है।

--रवींद्रनाथ ठाकुर

---

[1] ठगने, धोखा देने [2] ठगाना, धोखा खाना

: २५ :

दैव, भाग्य

१

दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥

—दैव सर्वत्र फलता है, विद्या और पौरुष नहीं। समुद्र-मंथन से विष्णु को तो लक्ष्मी मिलीं और शिव को विष प्राप्त हुआ।

२

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।

—रघुवंश

—ईश्वर की इच्छा से कहीं विष भी अमृत और कहीं अमृत भी विष हो जाता है।

३

सुबुद्धयोऽपि नश्यन्ति दुष्टदैवेन नाशिताः ।
स्वल्पधीरनुकूले च दैवे नन्दति सन्ततम् ॥

—बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी भाग्य की प्रतिकूलता से नष्ट हो जाते हैं और भाग्य की अनुकूलता से स्वल्पबुद्धि भी निरंतर आनंद करते हैं।

४

अनुकूले सदा दैवे क्रियाल्पा सुफला भवेत् । —शुक्र

—दैव के अनुकूल होने पर अल्प प्रयास भी विशेष फलदायक हो जाता है।

५

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथो विपिनेऽप्यरक्षितः,
कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति ॥

—दैव से रक्षित प्राणी अरक्षित दशा—अर्थात् विषम परिस्थिति में भी

सब प्रकार से सुरक्षित रहता है। इसके विपरीत दैव का मारा हुआ—अभागा आदमी चारों ओर से सुरक्षित होने पर भी नष्ट हो जाता है। अनाथ और वन में अरक्षित पड़ा हुआ मनुष्य भी, दैव की अनुकूलता से, जीवित रहता है और दैव के प्रतिकूल होने पर, घर में अनेक प्रयत्न करने पर भी विनाश को प्राप्त होता है।

६

वने रणे शत्रु जलाग्निमध्ये,
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥

—भर्तृहरि

—वन में, रण में, शत्रुओं में, जल और अग्नि के बीच में, समुद्र में तथा पर्वत के शिखर पर, सोये हुए, असावधान और संकट में पड़े हुए मनुष्य की रक्षा पूर्वजन्म के पुण्य ही करते हैं।

७

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्याऽपि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु संचितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥ —भर्तृहरि

—समय पर न मनुष्य का रूप काम आता है, न कुल और न शील। विद्या और यत्नपूर्वक की हुई सेवा भी फल नहीं देती। पूर्व तपस्या से संचित भाग्य ही समय पर वृक्ष की भांति मनुष्य को फल देते हैं।

८

स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

—नारी-चरित्र और पुरुष का भाग्य—इन्हें देवता भी नहीं जानते, मनुष्य क्या जानेगा!

९

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ।
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ॥

—महाभारत

—जो पुरुष जिस कार्य के भार को अपने ऊपर उठाने का मन से उत्साह करता है उसकी उस कार्य में दैव अवश्य सहायता करता है ।

१०

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥

—रामायण

—जो पुरुषार्थ से दैव को दबा देने में समर्थ होता है वह दैव-द्वारा कार्य में विघ्न पड़ने पर—अर्थात् भाग्य की प्रतिकूलता से—खिन्न नहीं होता ।

११

मूर्खमन्त्रः खलप्रीतिः पथ्यद्वेषः प्रमादिता ।
प्रभविष्णोर्विरोधश्च विधिवैमुख्यलक्षणम् ॥

—क्षेमेंद्र

—मूर्खों से राय लेना, दुष्टों से प्रीति करना, उचित बात से द्वेष करना, प्रमाद करना और सामर्थ्यशाली मनुष्य से विरोध करना—यह सब विधाता के विमुख होने—अर्थात् भाग्यहीनता के लक्षण हैं ।

१२

तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान ।
बैर बालि सुग्रीव के कहा कियो हनुमान ॥

१३

जैसी हो भवितव्यता तैसी मिलै सहाय ।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहां लै जाय ॥

—तुलसी

१४

जाकहं प्रभु दारुन दुख देहीं ।
ताकर मति पहिलेहिं हरि लेहीं ।।

—तुलसी

१५

दीन्ह चहै करतार जिन्हैं सुख,
सो तो 'रहीम' टरै नहिं टारे ।
उद्यम-पौरुष कीन्हें बिना धन
आवत आपुहि हाथ पसारे ।।
देव हँसे अपनी-अपना
विधि के परपंच न जात बिचारे ।
बेटा भयो बसुदेव के धाम औ
दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे ।।

१६

भा बिधिना प्रतिकूल जबै तब
ऊंट चढ़े पर कूकर काटत ।

१७

तदबीर पर हँसती रही तक़दीर किसीकी ।

१८

हसरत[1] पे उस मुसाफिरे बेकस की रोइये ।
जो थक गया हो बैठके मंज़िल के सामने ।।

—मसहफ़ी

---

[1] अफसोस; दुःख ।

: २६ :

पुरुषार्थ

१

धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत् ।
अशक्ताः पौरुषं कर्त्तुं क्लीवा दैवमुपासते ॥

—शुक्र

—बुद्धिमान सज्जन लोग पुरुषार्थ को बड़ा मानते हैं। असमर्थ, अकर्मण्य एवं कापुरुष लोग दैव की उपासना करते हैं—अर्थात् भाग्य के भरोसे रहते हैं।

२

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।
तस्मात्पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति ॥

—पूर्व-जन्म का किया हुआ कर्म ही दैव—भाग्य या प्रारब्ध कहलाता है। इससे यह मानना चाहिए कि पुरुषार्थ के बिना दैव सिद्ध नहीं होता।

३

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
कातराः इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥

—कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं, मनोरथ या इच्छामात्र से नहीं। जो होनहार है, वही होगा—ऐसा निकम्मे लोग कहते हैं।

४

उद्योगेन विना तैलं तिलानां नोपजायते।

—पंचतंत्र

—उद्योग के बिना तिलों में से तैल नहीं निकलता।

५

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।

—कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं, मनोरथ से नहीं। सोते हुए सिंह के मुख में मृग अपने-आप नहीं चले जाते। अर्थात् सिंह को भी आहार-प्राप्ति के लिए उद्यम करना पड़ता है।

६

उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र दैवं सहायकृत् ॥

—उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम—ये छह गुण जिसमें होते हैं, दैव उसकी सहायता करता है ।

७

पाणिमन्तो बलवन्तो धनवन्तो न संशयः ।

—महाभारत

—हाथवाले अर्थात् परिश्रमी, पुरुषार्थी मनुष्य बलवान् और धनवान् होते हैं—इसमें संदेह नहीं ।

८

'बारबार यत्न करने से असंभव भी संभव हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है और विष अमृत ।'

—योगवासिष्ठ

९

'आलसी और अनुपयोगी के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़तापूर्वक उद्योग करनेवाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।'

—धम्मपद

१०

कादर मन कर एक अधारा ।
दैव-दैव आलसी पुकारा ॥

—तुलसी

११

'मैंने आज तक कोई ऐसा आदमी नहीं देखा जो प्रतिदिन जल्दी उठता हो, मेहनत करता हो और ईमानदारी से रहता हो, फिर भी दुर्भाग्य की शिकायत करता हो ।'

—एडिसन

१२

जां दम के आमदस्ती अंदर जहाने हस्ती।
पेशत के ता बरस्ती बिनहादा नर्दबानस्त ॥

—रूमी

—तू जबसे इस संसार में आया है तेरी उत्पत्ति के समय से ही तेरे सम्मुख उन्नति की सीढ़ी रखी हुई है।

: २७ :

कार्य-नीति

१

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायोह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धचेदकर्मणः ॥

—गीता

—"नियत अर्थात् नियमित कर्म को तू कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना अधिक अच्छा है। यदि तू कर्म न करेगा तो तेरा जीवन-निर्वाह तक न हो सकेगा।"

२

सहजं कर्म कौन्तेय, सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥

—गीता

—सहज कर्म को दोषयुक्त होने पर भी नहीं त्यागना चाहिए क्योंकि सभी कर्म धुंये से अग्नि की भांति एक-न-एक दोष से आच्छादित रहते हैं।

३

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥

—मनु

—जिस काम से अंतरात्मा को परितोष हो उसे यत्नपूर्वक करे। इसके विपरीत जो कर्म हो उसे न करे।

४

मूलमर्थस्य संरक्ष्यमेष कार्यविदा नयः ।
मूले हि सति सिद्धयन्ति गुणाः पुष्पफलादयः ।।

—रामायण

—अर्थ के मूल की सदैव रक्षा करनी चाहिए, ऐसी पंडितों की नीति है। मूल से ही सब गुण पुष्प-फलादिक सिद्ध होते हैं।

५

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ।।

—चाणक्य

—जो मनुष्य निश्चित कार्यों को छोड़कर अनिश्चित के पीछे दौड़ता है, उसके निश्चित कार्य भी नष्ट हो जाते हैं, अनिश्चित तो नष्ट ही हुआ रहता है।

६

सामर्थ्ययोगं संप्रेक्ष्य देशकालौ व्ययागमौ ।
विमृश्य सम्यक्च धियं कुर्वन्प्राज्ञो न सीदति ।।

—महाभारत

—जो बुद्धिमान मनुष्य आत्मसामर्थ्य, देश-काल, आय-व्यय को देखकर विचार स्थिर करता है, वह अंत में दुःखी नहीं होता।

७

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।
न समीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ।।

—बुद्धिमान मनुष्य एक पैर आगे बढ़ाता है, लेकिन एक पैर पीछे जमाये रहता है। जबतक वह दूसरे स्थान की भली-भांति परीक्षा नहीं कर लेता, तबतक पहले स्थान को नहीं छोड़ता।

८

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ।।

—सामर्थ्यवान् के लिए अधिक भारी क्या है? व्यवसायी के लिए दूर क्या है? विद्वान् के लिए विदेश और मधुरभाषी के लिए पराया कौन है?

९

अतिदाक्षिण्ययुक्तानां, शङ्कितानां पदे-पदे ।
परापवादभीरूणां, दूरतो यान्ति सम्पदः ॥

—आवश्यकता से अधिक चतुराई करनेवाले, पद-पद पर शंका करनेवाले और परापवाद से डरनेवाले से सम्पदा दूर चली जाती है।

१०

अप्रधानः प्रधानः स्यात्काले चात्यन्तसेवनात् ।
प्रधानोऽप्यप्रधानः स्यात्सेवालस्यादिना यतः ॥

—शुक्र

—समय पर अत्यंत सेवा करने से अप्रधान व्यक्ति भी प्रधान हो जाता है और सेवा में आलस्य करने—चूक जाने से प्रधान भी अप्रधान हो जाता है।

११

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।

—भारवि

—सहसा—उतावली में कोई काम न करे क्योंकि बिना विचारे काम करना घोर अनर्थ का कारण होता है।

१२

न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं परिसेवति ॥

—धम्मपद

—उस काम का करना अच्छा नहीं जिसे करके पीछे पछताना पड़े और जिसके फल को रोते हुए भोगना पड़े।

१३

सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च ।
यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥

—धम्मपद

—बुरे तथा अपने लिए अहितकर कार्यों का करना सहज है, लेकिन अच्छे और हितकारी कार्यों का करना परम कठिन है।

१४

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सो, मं लोकं प्रभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

—धम्मपद

—जो एक बार प्रमाद करके फिर दुबारा प्रमाद नहीं करता, वह मेघ-मुक्त चंद्र की भांति इस संसार को प्रकाशित करता है।

१५

यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयति।
सो मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

—धम्मपद

—जिस मनुष्य का दुष्कर्म उसके सत्कर्मों से दब जाता है वह इस लोक को मेघ से मुक्त चंद्रमा की भांति प्रकाशित करता है।

१६

अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे।
मिच्छाच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥

—धम्मपद

—जो अलज्जा के काम में लज्जा करते हैं और लज्जा करने योग्य कार्य में लज्जा नहीं करते, ऐसे मिथ्याधारणावाले मनुष्य दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

१७

मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं।
च जे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं॥

—धम्मपद

—यदि थोड़े सुख के परित्याग से अधिक सुख की प्राप्ति होती दिखाई पड़े तो बुद्धिमान् मनुष्य अधिक सुख की ओर ध्यान देता हुआ थोड़े सुख को छोड़ दे।

१८

न कर्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः ।

—महाभारत

—हठ न करना चाहिए। हठ का परिणाम अत्यंत भयंकर होता है।

१९

किं करोत्येव पाण्डित्यमस्थाने विनियोजितम् ।
अन्धकारप्रतिच्छन्ने घटे दीप इवाहितः ॥

—पंचतंत्र

—"अनुचित स्थान में लगाई पंडिताई क्या कर सकती है। अंधकार से पूर्ण घड़े के ऊपर रखा हुआ दीप उसके भीतर का अंधकार दूर नहीं कर सकता।"

२०

व्यसने वाऽर्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे ।
विमृशंश्च स्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ॥

—रामायण

—विपत्ति में, आर्थिक संकट में अथवा प्राणांतक भय उपस्थित होने पर जो अपनी बुद्धि से विचार करता हुआ धैर्य धारण करता है, वह अंत में दुःखी नहीं होता।

२१

यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते ।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्ध्यति ॥

—रामायण

—जो पराक्रम का अवसर उपस्थित होने पर विषादग्रस्त हो जाता है, उसका तेज नष्ट हो जाता है; फिर उससे पुरुषार्थ नहीं होता।

२२

आलस्यं, स्त्री-सेवा, सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् ।
सन्तोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्त्वस्य ॥

—आलस्य, स्त्री में आसक्ति, अस्वस्थता, जन्मभूमि का मोह, संतोष और भीरुता—ये छह मनुष्य की उन्नति में बाधक होते हैं।

२३

योे न वेत्ति गुणान् यस्य न तं सेवेत पंडितः ।
न हि तस्मात्फलं किंचित्सुकृष्टादूषरादिव ॥

—पंचतंत्र

—बुद्धिमान् मनुष्य ऐसे व्यक्ति की सेवा न करे जो उसके गुण को नहीं जानता। ऐसे व्यक्ति की सेवा से उसी प्रकार कुछ भी फल नहीं प्राप्त होता जैसे कि जोती हुई ऊसर भूमि से।

२४

अमन्त्र मक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम् ।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥

—शुक्र

—ऐसा कोई अक्षर नहीं है जो मंत्र न हो, ऐसा कोई पौधा नहीं है जो औषध न हो, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो काम का न हो। इनको यथायोग्य काम में लगानेवाला चाहिए।

२५

त्रिविधाः पुरुषाः राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेत्तथैवैतांस्त्रिविधेष्वपि कर्मसु ॥

—महाभारत

—उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। उन्हें यथायोग्य उत्तम, मध्यम, अधम कार्यों में नियुक्त करें।

२६

एरण्डभिण्डार्कनलैः प्रभूतैरपि संचितैः ।
दारुकृत्यं यथा नास्ति तथैवाज्ञैः प्रयोजनम् ॥

—पंचतंत्र

—जिस प्रकार ढेर-के-ढेर एरंड, भिण्ड, आक, नल से काठ का काम नहीं निकलता, उसी प्रकार अज्ञों से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

२७

मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो,
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सन्,
तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥

—महाभारत

—जो अपने आश्रितों को बांटकर स्वयं थोड़ा ही खा लेता है, अधिक काम करके थोड़ा ही आराम करता है और मांगने पर शत्रु को भी दान दे देता है, उस आत्मज्ञानी को अनर्थ स्पर्श नहीं करते ।

२८

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः ।
स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः कार्यध्वंसो हि मूर्खता ॥

—घटखर्पर

—बुद्धिमान् मनुष्य अपमान को सहकर और अभिमान को त्यागकर अपना काम बना ले । काम का बिगड़ जाना ही मूर्खता है ।

२९

सुवर्ण कठोर होने पर भी कार्य के समय कोमल हो जाता है । दुर्व्वर्ण (रूपा) सदा कोमल रहने पर भी कार्य के समय कठोर हो जाता है । सुजात-कुजात अर्थात् श्रेष्ठ और नीच पुरुषों के चरित्र में भी ऐसा ही अंतर होता है ।

—महाभारत

३०

जो पहले के उपकार को भूल जाता है, उसे बाद में फिर काम पड़ने पर कोई उपकार करनेवाला नहीं मिलता ।

—जातक

३१

जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ ।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठ ॥

—कबीर

३२

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय॥

—कबीर

३३

बहते को मत बहन दे, कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा-सुना मानै नहीं, बचन कहौ दुइ और॥

—कबीर

३४

मुखिया मुख सों चाहिये, खान-पान को एक।
पालै-पोसै सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक॥

३५

गुन तें लेत रहीम जन, सलिल कूप तें काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि॥

३६

रहिमन देखि बड़ेन को लघु न दीजिये डारि।
जहां काम आवे सुई काह करै तरवारि॥

३७

रहिमन सूधी चाल सों प्यादा होत वजीर।
फ़रज़ी मीर न ह्वै सकै, टेढ़े की तासीर॥

३८

रहिमन दुर्दिन के परे बड़न किये घटि काज।
पांच रूप पाण्डव भये रथवाहक नलराज॥

३९

सहसा करि पीछे पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

—तुलसी

४०

सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ।

—तुलसी

४१

अति संघरषन करै जो कोई ।
अनल प्रगट चंदन तें होई ॥

—तुलसी

४२

उद्यम कबहुं न छांड़िये पर आसा के मोद ।
गागर कैसे फोड़िये आवत देखि पयोद ॥

—वृंद

४३

जाको जैसो उचित है, करिये सोइ विचारि ।
गीदड़ कैसे ल्याइहै, गजमुक्ता गज मारि ॥

—वृंद

४४

कमाले बुज़दिली है पस्त होना अपनी आंखों में ।
अगर थोड़ी-सी हिम्मत हो तो फिर क्या हो नहीं सकता ॥

—चकबस्त

४५

काम छोटों से निकलता है बड़ा ।
यह सबक़ भी आंख के तिल से मिला ॥

—हाफ़िज

४६

मुश्किले नेस्त कि आसां नशवद ।
मर्द बायद कि हरासां नशबद ॥

—शेख़ सादी

—ऐसी कोई कठिनाई नहीं है जो आसान न हो जाय। इसलिए मनुष्य को घबड़ाना नहीं चाहिए।

४७

निशाने पै जो लग जाय उसीको तीर कहते हैं।

४८

चतुर निशानेबाज़ तीर पीछे छोड़ता है, निशाना पहले ही अच्छी तरह साध लेता है।

—बोस्तां

४९

कोई भी वस्तु निरर्थक और तुच्छ नहीं है। प्रत्येक वस्तु अपनी स्थिति में सर्वोत्कृष्ट है।

—लांगफ़ेलो

५०

वह मनुष्य दुरुस्त है जिसका संबंध भविष्य से जुड़ा है।

—इब्सन

५१

ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो धन से असाध्य हैं, किंतु केवल पवित्रता के बल पर ही सिद्ध की जा सकती हैं।

—विवेकानंद

५२

मैं कोई ऐसा महत्वपूर्ण कार्य नहीं जानता जो धन की कमी के कारण रुका हो।

—मो० क० गांधी

: २८ :

स्थान का महत्व

१

स्थानं प्रधानं न बलं प्रधानं,
स्थाने स्थितः कापुरुषोऽपि शूरः ।

—स्थान प्रधान है, बल प्रधान नहीं है । स्थान के प्रभाव से कापुरुष भी शूर हो जाता है ।

२

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।
इति विज्ञाय मतिमान्स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥

—दांत, केश, नख और मनुष्य स्थानभ्रष्ट होने पर शोभा नहीं देते । इसे भली-भांति समझकर बुद्धिमान को अपना स्थान न छोड़ना चाहिए ।

३

—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

—जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं ।

४

पितृपूर्वार्जिता भूमिर्दरिद्रापि सुखावहा ।
अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ॥

—राम ने लक्ष्मण से कहा—अपने बाप-दादा की भूमि संपन्न न होने पर भी सुखदायिनी होती है । लक्ष्मण ! यह सोने की लंका भी मुझे अच्छी नहीं लगती ।

५

न तादृग्जायते सौख्यमपि स्वर्गे शरीरिणाम् ।
दारिद्र्येऽपि हि यादृक् स्यात्स्वदेशे स्वपुरे गृहे ॥

—पंचतंत्र

—शरीरधारियों को ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं मिलता जैसा कि दरिद्र होने पर भी अपने देश, ग्राम और घर में मिलता है ।

६

नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति ।
स एव प्रच्युतः स्थानाच्छुनापि परिभूयते ॥

—पंचतंत्र

—अपने स्थान में स्थित मगर बड़े-से-बड़े हाथी को भी खींच लेता है; लेकिन वही अपने स्थान से च्युत अर्थात जल से बाहर होने पर कुत्ते से भी तिरस्कृत होता है।

७

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः ।
न च विद्यागमोप्यस्ति वासं तत्र न कारयेत् ॥

—चाणक्य

—जिस देश में अपना मान-सम्मान न हो, जीविका का साधन न हो, अपने बंधु-बांधव न हों और न किसी विद्या की प्राप्ति हो, वहां नहीं रहना चाहिए।

८

जहां बसिअ सोइ सुंदर देसू ।

—तुलसी

९

तुलसी कबहुं न जाइये, जन्मभूमि के ठांव ।
जानें, पहिचानें नहीं, लेत पुरानो नांव ॥

१०

हंसा सरवर ना तजो जो जल खारो होय ।
डावर[1]-डावर डोलते, भला न कहसी कोय ॥

---

[1]गड्ढा, तलैया

: २९ :

गार्हस्थ्य जीवन

१

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता प्रियालापिनी ।
इच्छापूर्तिधनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः ॥
आतिथ्यं सुरपूजनं प्रतिदिनं मिष्ठान्नपानं गृहे ।
साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥

—चाणक्य

—जिस गृहस्थाश्रम में आनंदपूर्ण गृह, बुद्धिमान् पुत्र, प्रियंवदा स्त्री, इच्छापूर्ति के लिए पर्याप्त धन, अपनी पत्नी से प्रीति, आज्ञाकारी सेवक, आतिथ्य-सत्कार, देवपूजन, प्रतिदिन मधुर भोजन तथा सत्पुरुषों के संग-सत्संग का सुअवसर सदा सुलभ होता है, वह धन्य है ।

२

गृहाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवद् गृहम् ।

—पद्मपुराण

—गृहस्थाश्रम परम पवित्र है, घर सदा तीर्थ के समान है ।

३

न गृहेण गृहस्थः स्याद् भार्य्यया कथ्यते गृही ।
यत्र भार्या गृहं तत्र, भार्याहीनं गृहं वनम् ॥

—वृहत्पराशरसंहिता

—केवल घर में रहने से ही कोई गृहस्थ नहीं होता; पत्नी के साथ घर में रहने से मनुष्य गृहस्थ कहलाता है । जहां भार्या है वहीं घर है; भार्य्याहीन गृह तो वन-तुल्य है ।

४

सन्तुष्टो भार्य्यया भर्त्ता भर्त्ता भार्य्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

—मनु

—जिस कुल में स्त्री-पुरुष परस्पर एक-दूसरे से संतुष्ट रहते हैं, उसका अवश्य कल्याण होता है ।

५

माता यस्य गृहे नास्ति भार्य्या चाप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥

—चाणक्य

—जिसके घर में माता नहीं है, और स्त्री कर्कशा है उसको वन में चले जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए घर और वन एक-से हैं ।

६

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

—मनु

—जिस कुल में बहू-बेटियां क्लेश भोगती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है । इसके विपरीत, जहां वे सुखी-संतुष्ट रहती हैं वह कुल सब प्रकार से फूलता-फलता है ।

७

अर्द्धं भार्य्या मनुष्यस्य भार्य्या श्रेष्ठतमः सखा ।
असहायस्य लोकेऽस्मिन् लोक-यात्रा-सहायिनी ॥

—महाभारत

—पत्नी पुरुष की अर्द्धांगिनी और परम मित्र है । संसार में जिसका सहायक कोई न हो, उसकी पत्नी ही जीवन-यात्रा में साथ देती है।

८

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ।
आल्हादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी ॥

—चाणक्य

—जिस प्रकार चंद्रमा से रात की शोभा होती है, उसी प्रकार एक ही सुशील एवं विद्वान पुत्र से सारा कुल आह्लादित हो जाता है ।

९

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥

—चाणक्य

—जिस प्रकार आग से जलता हुआ एक सूखा वृक्ष अपने साथ-साथ सारे वन को जला देता है, उसी प्रकार एक कुपुत्र सारे कुल के संताप और विनाश का कारण होता है।

१०

सुनो हो बिटप प्रभु! पहुप तिहारे अहैं,
राखिहौ हमैं तो सोभा रावरी बढ़ावेंगे ।
तजिहौ हरषि के तो बिलग न मानैं कछू,
जहां-जहां जैहें तहां दूनो जस गावेंगे ॥
सुरन चढ़ेंगे, नर-सिरनि चढ़ेंगे नित
सुकवि 'अनीस' हाथ-हाथ न बिकावेंगे ।
देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगु काहू
भेस में रहेंगे तऊ रावरे कहावेंगे ॥

: ३० :

धन की महिमा

१

अर्थस्य पुरुषो दासः दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।

—महाभारत

—मनुष्य धन का दास है, धन किसीका दास नहीं है।

२

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पंडितः ॥

—रामायण

—जिसके पास धन होता है, उसीके मित्र और बंधु-बांधव अर्थात् सब अपने होते हैं। संसार में धनवान् ही बुद्धिमान और पुरुषार्थी माना जाता है।

३

न विद्यया नैव कुलेन गौरवं,
जनानुरागो धनिकेषु सर्वदा।
कपालिना मौलिधृतापि जाह्नवी,
प्रयाति रत्नाकरमेव सत्वरम्॥

—सर्वसाधारण की दृष्टि में विद्या और कुल का विशेष महत्व नहीं होता; लोगों का अनुराग या झुकाव सदा धनवान के प्रति ही होता है। शिवजी यद्यपि गंगा को सिर पर धारण करते हैं फिर भी वह उन्हें छोड़कर तुरंत रत्नाकर के पास चली जाती है।

४

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते,
न पीयते काव्यरसः पिपासितैः।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्ज्जय निष्फलाः कलाः॥

—माघ

—भूखा आदमी व्याकरण से भूख नहीं बुझाता। उसी प्रकार प्यासा आदमी काव्य-रस से तृप्त नहीं होता। विद्या से किसीने अपने कुल का उद्धार नहीं किया। अतः धन का उपार्जन करो। उसके बिना सभी गुण व्यर्थ हैं।

५

लज्जा स्नेहः स्वरमधुरता बुद्धयो यौवनश्रीः।
कान्तासंगः स्वजनममता दुःखहानिर्विलासः॥
धर्मःशास्त्रं सुरगुरुमतिः शौचमाचारचिन्ता।
पूर्णे सर्वे जठरपिठरे प्राणिनां संभवन्ति॥

—पंचतंत्र

——लज्जा, स्नेह, मधुरसंभाषण, बुद्धि, यौवन की शोभा, पत्नी-प्रेम, स्वजनों के प्रति आत्मीयता, सुख, आमोद-प्रमोद, धर्म, शास्त्र, देवभक्ति, गुरुभक्ति और शौच-आचार की बातें प्राणियों को पेट के भरे रहने पर ही सूझती हैं।

६

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं,
दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।
ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते,
अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥

——चाणक्य

——धनहीन मनुष्य को उसके मित्र, उसकी स्त्री और नौकर-चाकर तथा बंधु-बांधव सभी छोड़ देते हैं। वही जब धनवान हो जाता है तो सभी फिर उसके पास आ जाते हैं। इसलिए धन ही संसार में मनुष्य का बंधु या सच्चा साथी है।

७

गतवयसामपि पुंसां येषामर्थाः भवन्ति ते तरुणाः ।
अर्थेन तु ये हीना वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्युः ॥

——पंचतंत्र

——वृद्ध पुरुषों में भी जिनके पास धन है, वे तरुण हैं। जो धनहीन हैं वे युवावस्था में ही वृद्ध हो जाते हैं।

८

जब लगि वित्त न आपने,
तब लगि मित्र न कोइ ।
रहिमन अम्बुज अम्बु बिन,
रवि ताकर रिपु होइ ॥

९

सच है कहा किसीने कि भूखे भजन न हो ।
अल्लाह को भी याद दिलाती हैं रोटियां ॥ ——नजीर

१०

सांईं सब संसार में मतलब का ब्योहार ।
जब लगि पैसा गांठ में तब लगि यार हजार ॥
तब लगि यार हजार संग ही संग में डोलैं ।
पैंसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलैं ॥
कह 'गिरिधर' कबिराय जगत यहि लेखा भाई ।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई सांईं ॥

: ३१ :

निर्धनता

१

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म ।
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ॥
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव ।
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

—नीतिशतक

—सब इंद्रियां वही हैं, सब कर्म भी वही हैं, वही प्रखर बुद्धि और वैसे ही वचन भी हैं; लेकिन धन की गर्मी के बिना वही मनुष्य क्षणमात्र में कुछ-का-कुछ हो जाता है—यह विचित्र बात है।

२

सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता ॥
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ॥
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य ।
यत् सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति ॥

—मृच्छकटिक

—मुझे अपने धन के नष्ट हो जाने की सचमुच कुछ भी चिंता नहीं है क्योंकि भाग्य से ही धन आता-जाता है। मुझे दुःख यही है कि धन के क्षीण हो जाने से मित्रों की मित्रता भी शिथिल पड़ जाती है।

३

बुभुक्षितः किं न करोति पापं,
क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति ।

—भूखा आदमी कौन-सा पाप नहीं करता; क्षीण मनुष्य दयारहित हो जाते हैं।

४

दारिद्र्यात्पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते ।
सुस्निग्धा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फारीभवन्त्यापदः ॥
सत्त्वं ह्रास मुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।
पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्तस्य संभाव्यते ॥
—शूद्रक

—निर्धन मनुष्य की बात उसके बंधु-बांधव भी नहीं मानते। परमप्रिय मित्र भी उससे विमुख हो जाते हैं। उसके सामने विपत्तियों का तांता लग जाता है। उसका आत्मतेज क्षीण हो जाता है। उसके शील-रूपी चंद्रमा की कांति मलिन हो जाती है। दूसरों का दोष भी उसके सिर मढ़ दिया जाता है।

५

हे दारिद्र्य ! नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः ।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन ॥

—हे दारिद्र्य ! तुम्हें नमस्कार है क्योंकि तुम्हारी कृपा से मैं सिद्धपुरुष बन गया हूं; मैं सारे जगत को देखता हूं, लेकिन मुझे कोई नहीं देखता। भाव यह है कि दरिद्र तो सबका मुंह ताकता है, लेकिन उसपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ती।

६

वाणी दरिद्रस्य शुभा हिताऽपि,
ह्यर्थेन शब्देन च संप्रयुक्ता ।
न शोभते वित्तवतः समीपे,
भेरीनिनादोपहतेव वीणा ॥

—जिस प्रकार भेरी के निनाद से वीणा की झंकार दब जाती है, उसी प्रकार धनवान की बात के आगे निर्धन मनुष्य की बात शुभ, हितकर और शब्द-अर्थ से युक्त अर्थात् सार्थक एवं सरस होने पर भी शोभा नहीं पाती।

७

न विभाव्यन्ते लघवो वित्तविहीनाः पुरोऽपि निवसन्तः ।
सततं जातविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदाः पयसि ॥

—जैसे पानी में उत्पन्न होकर पानी ही में नष्ट होनेवाले बुलबुलों पर किसीका ध्यान नहीं जाता, उसी प्रकार धन से हीन क्षुद्र व्यक्ति सामने रहते हुए भी लोगों की दृष्टि में नहीं आते।

८

नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्दविभवस्य ।
घृत-लवण-तैल-तण्डुल-वस्त्रेन्धन-चिन्तया सततम् ॥

—पंचतंत्र

—धन की कमी होने पर निरंतर घी, नमक, तेल, चावल, वस्त्र, लकड़ी की चिंता से बड़े-बड़े बुद्धिमानों की भी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

९

गगनमिव नष्टतारं, शुष्कमिव सरः श्मशानमिव रौद्रम् ।
प्रियदर्शनमपि रुक्षं भवति गृहं धनविहीनस्य ॥

—धनविहीन मनुष्य का सुंदर घर भी तारों से रहित आकाश, सूखे सरोवर और भयंकर श्मशान-जैसा सूना और उदास लगता है।

: ३२ :

धन के दोष

१

अर्थ एव हि केषाञ्चिदनर्थं भजते नृणाम् ।
अर्थश्रेयसि चासक्तो न श्रेयो विन्दते नरः ॥

—महाभारत

—कुछ लोगों के लिए तो अर्थ ही अनर्थ का कारण होता है। जो केवल धन से ही कल्याण की कामना करता हैं, वह कल्याण नहीं पा सकता।

२

अविश्वासनिधानाय महापातकहेतवे ।
पितृपुत्रविरोधाय हिरण्याय नमोऽस्तु ते ॥

—हे धन! तुझे नमस्कार है। तू अविश्वास का मूल कारण, महापापों का हेतु और पिता-पुत्र में भी विरोध करानेवाला है।

३

लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम् ।
शेषे धराभरक्लान्ते शेते नारायणः सुखम् ॥

—धनी-मानी लोग प्रायः दूसरे के कष्ट को नहीं समझते, तभी तो पृथ्वी के भार से पीड़ित शेषनाग के ऊपर नारायण सुख से सोते हैं।

४

कनक[१] कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ ।
वह खाये बौराइ नर यहि पाये बौराइ ॥

—बिहारी

: ३३ :

तृष्णा

१

तृष्णे देवि! नमस्तुभ्यं धैर्यविप्लवकारिणी ।
विष्णुस्त्रैलोक्यपूज्योऽपि यत्त्वया वामनीकृतः ॥

—योगवासिष्ठ

—धैर्यनाशिनी तृष्णे देवि! तुम्हें नमस्कार है। जो विष्णु तीनों लोकों में पूज्य थे, उन्हें भी तुमने वामन बना दिया।

---

[१] सोना, धतूरा।

२

तृष्णे देवि ! नमस्तुभ्यं यया वित्तान्विता अपि ।
अकृत्येषु नियोज्यन्ते भ्राम्यन्ते दुर्गमेष्वपि ॥

—तृष्णा देवी ! तुम्हें नमस्कार है । तुम्हारे ही कारण धन-संपन्न लोग भी ऐसे कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं जो न करने योग्य हैं और तुम्हीं उन्हें दुर्गम मार्ग पर चलने या चक्कर लगाने के लिए विवश कर देती हो ।

३

यावत्सतर्षः पुरुषो हि लोके,
तावत्समृद्धोऽपि सदा दरिद्रः ।

—सौंदरनंद

—संसार में मनुष्य जबतक तृष्णा से युक्त रहता है तबतक वह समृद्ध होने पर भी सदा दरिद्र ही बना रहता है ।

४

अर्थातुराणां न गुरुर्नबन्धुः
कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा
क्षुधातुराणां न रुचिर्न बेला ॥

—धन-लोलुप मनुष्यों का न कोई गुरु होता है, न बंधु; कामातुर मनुष्यों को न भय होता है, न लज्जा संकोच; विद्या-प्रेमियों को न सुख भोगने का अवसर मिलता है, न सोने का और क्षुधा पीड़ित-मनुष्यों की न कोई स्वतंत्र रुचि होती है, न भोजन की कोई निश्चित बेला ।

५

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला ।

—भर्त्तृहरि

—जिसकी तृष्णा बढ़ी-चढ़ी है वही दरिद्र है ।

६

आधी अरु सूखी भली, पूरी सो सन्ताप ।
जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप ॥

—कबीर

७

मैं था पूरन ब्रह्म यदि चाह न होती बीच ।

—रहीम

८

जिनको कछू न चाहिए वो ही शाहंशाह ।

—रहीम

: ३४ :

याचना

१

देहीतिवचनाद्द्वादात् देहस्थाः पञ्च देवताः ।
सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धी-श्री-ह्री-शान्ति-कीर्तयः ।।
तावद् गुणाः गुरुत्वं च यावन्नार्थयते परम् ।
अर्थी चेत् पुरुषो जातः क्व गुणाः क्व च गौरवम् ।।
तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालयः ।
नमस्यः सर्वलोकानां यावन्नार्थयते परम् ।।

—ब्रह्मपुराण

—'कुछ दीजिये' यह वचन मुख से निकलते ही मनुष्य के शरीर के ये पांच देवता—बुद्धि, श्री, लज्जा, शांति और कीर्ति तत्काल निकलकर चले जाते हैं। मनुष्य के गुण और गौरव तभी तक सुरक्षित रहते हैं, जबतक वह दूसरों के आगे हाथ नहीं फैलाता। याचक बन जाने पर कहां गुण और कहां गौरव! मनुष्य तभीतक सर्वोत्तम, सर्वगुणसंपन्न और सर्व-पूज्य बना रहता है जबतक वह दूसरे से याचना नहीं करता।

२

विशाखान्तं गता मेघाः प्रसवान्तं हि यौवनम् ।
प्रणामान्तं सतां कोपो याचनान्तं हि गौरवम् ।।

—विशाखा नक्षत्र के उपरांत वर्षाकाल,प्रसव के उपरांत नारी का यौवन,

प्रणाम करने के बाद सत्पुरुषों का क्रोध और याचना करने के बाद मनुष्य का गौरव समाप्त हो जाता है।

३

विद्वेषणं परमं जीवलोके,
कुर्य्यान्नरः पार्थिव याच्यमानः ।

—महाभारत

—संसार में लोग मांगनेवाले से बहुत चिढ़ते हैं।

४

दारिद्रचस्य परा मूर्तिर्याञ्चा न द्रविणाल्पता ।
अपि कौपीनवान् शंभुस्तथापि परमेश्वरः ।।

—भोजप्रबंध

—दीनता की परम मूर्ति धनहीनता नहीं, याचना है। शिवजी कौपीनधारी होने पर भी परमेश्वर ही माने जाते हैं।

५

विपद्यपि हि ते धन्याः न ये दैन्यप्रणोदिताः ।
धनैर्मलिनचित्तानामालभन्तेऽङ्गणं क्वचित ।।

—स्कंदपुराण

—वे ही धन्य हैं जो विपत्तिग्रस्त होने पर भी कभी दीनता से प्रेरित होकर धनोन्मत्त पुरुषों के आंगन में नहीं जाते।

६

न तं याचे यस्य पियं जिगिंसे,
देस्सो होति अति याचनाय ।

—जातक

—जो चीज मालूम हो कि किसीको प्रिय है, वह उससे न मांगे। अति याचना करनेवाले के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है।

७

आब गया, आदर गया, नैनन गया सनेहु ।
ये तीनों तब ही गये, जबहिं कहा कछु देहु ।। **—कबीर**

८

विन मांगे है दूध वराबर, मांगे मिलै सो पानी ।
कह कवीर सो रकत बराबर, जामें ऐंचातानी ।।

—कबीर

९

मर जाऊं मांगूं नहीं, अपने तन के काज ।
परकारज के कारने मांगत मोंहि न लाज ।।

—कबीर

१०

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो ।
जा दिन कर-तर कर करो, ता दिन मरन करो ।।

११

मान राखिबो मांगिबो, पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिहुं तब फबैं, जब चातक मत लेहु ।।

१२

भीख मांगने से हांड़ी तो चढ़ जाती है, लेकिन मनुष्य का गौरव गिर जाता है ।

—शेख सादी

: ३५ :

धन का संचय और उपयोग

१

संसृतौ व्यवहाराय सारभूतं धनं स्मृतम् ।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै नरो ह्युपायसाहसैः ।।

—शुक्राचार्य

—संसार के व्यवहारों के लिए धन ही सारवस्तु है । अतः मनुष्य को युक्ति एवं साहस के साथ उसकी प्राप्ति के लिए उद्योग करना चाहिए ।

२

सम्पदा सुस्थिरम्मन्यो भवति स्वल्पयाऽपि यः ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्द्धयति तस्य ताम् ॥

—माघ

—थोड़ी ही संपत्ति को जो सुस्थिर मानकर संतुष्ट हो जाता है, उसकी संपत्ति को विधाता अपने कर्त्तव्य का पालन करता हुआ जानकर ही फिर नहीं बढ़ाता।

३

यः काकिणीमप्यपथप्रपन्नां समुद्धरेन्निष्कसहस्रतुल्याम् ।
कालेषु कोटिष्वपि मुक्तहस्तस्तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः ॥

—हितोपदेश

—जो कौड़ी को भी अपव्यय से बचाता है और उसे सहस्र निष्क-तुल्य मानता है, लेकिन समय पर मुक्तहस्त से करोड़ों व्यय करता है—उस राजसिंह को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती।

४

कर्तव्यः संचयो नित्यं कर्तव्यो नातिसंचयः।

—हितोपदेश

—धन का नित्य संचय करना चाहिए, लेकिन बहुत अर्थात् आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना चाहिए।

५

कल्पयति येन वृत्तिं येन लोके प्रशस्यते सद्भिः ।
स गुणस्तेन च गुणिना रक्ष्यः संवर्द्धनीयश्च ॥

—हितोपदेश

—गुणी पुरुष को उचित है कि जिस गुण के द्वारा उसकी जीविका चलती है तथा सभ्य समाज में प्रतिष्ठा होती है उसकी वह रक्षा और वृद्धि करे।

६

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥

—धन-धान्य के प्रयोग अर्थात् लेन-देन में, विद्योपार्जन में तथा भोजन करने में और व्यवहार में लज्जा-संकोच न करनेवाला सुखी होता है।

७

व्यापारान्तरमुत्सृज्य वीक्षमाणो वधूमुखम् ।
यो गृहेष्वेव निद्राति दरिद्राति स दुर्मतिः ॥

—जो मूर्ख काम-धंधा छोड़कर घर में स्त्री का मुंह देखता पड़ा रहता है, वह दरिद्री होता है।

८

न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः ।
एतदेव हि पाण्डित्यं यतस्वल्पाद् भूरिरक्षणम् ॥

—बुद्धिमान् मनुष्य थोड़े-से लाभ के पीछे बहुत की हानि नहीं करता। बुद्धिमानी इसीमें है कि मनुष्य थोड़ा व्यय करके बहुत की रक्षा करे।

९

इदमेव हि पाण्डित्यं चातुर्य्यमिदमेव हि ।
इदमेव सुबुद्धित्वमायादल्पतरो व्ययः ॥

—विद्वत्ता, चतुराई और बुद्धिमानी की बात यही है कि मनुष्य अपनी आय से कम व्यय करे।

१०

शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वयं वित्तमुपार्जितम् ।
रसायनमिव प्राज्ञैर्हेलया न कदाचन ॥

—पंचतंत्र

—बुद्धिमान आदमी को उचित है कि वह अपनी कमाई के धन का उपयोग रसायन की भांति धीरे-धीरे सम्हालकर करे; उसके साथ खेल न करे।

११

उत्तमं स्वार्जितं भुक्तं मध्यमं पितुरर्जितम् ।
कनिष्ठं भ्रातृवित्तं च स्त्रीवित्तमधमाधमम् ॥

—अपना कमाया धन खाना उत्तम, पिता का कमाया धन खाना मध्यम,

भाई का कमाया धन खाना अधम और स्त्री का कमाया धन खाना अधम से भी अधम है।

१२

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवेत् ॥

—भतृहरि

धन की तीन ही गतियां हैं—दान, भोग और नाश। जो मनुष्य न तो दान देता है और न भोगता है उसके धन का नाश हो जाता है।

१३

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥

—चाणक्य

—जो विद्या केवल पुस्तक में रहती है और जो संपत्ति दूसरे की मुट्ठी में रहती है वह समय पड़ने पर निरर्थक सिद्ध होती है—न वह विद्या काम आती है और न वह संपत्ति।

१४

—जो मूढ़ दिन के प्रकाश में कपूर का दीपक जलाता है, शीघ्र ही ऐसा होगा कि रात्रि के समय में उसके दीपक में तेल न रहेगा।

—शेख सादी

१५

साईं इतना दीजिये, जामें कुटुंब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय ॥

—कबीर

१६

भाग्यवान् वह है जिसका धन गुलाम है और अभागा वह है जो धन का गुलाम है।

—वाल्तेयर

१७

यदि तुम थोड़े ही में अपना काम अच्छी तरह चलाना चाहते हो तो किसी चीज में पैसा लगाने से पहले स्वयं अपने से दो प्रश्न पूछ लिया करो। १—क्या मुझे सचमुच इस चीज की जरूरत है? २—क्या इसके विना भी मेरा काम चल सकता है?

—सिडनी स्मिथ

१८

यदि तुम अपनी आय से कम में निर्वाह कर सकते हो, तो निश्चय जानो कि पारस पत्थर तुम्हारे पास है।

—बेंजामिन फ्रैंकलिन

१९

यदि घर को सुखी बनाना चाहते हो तो कारबार की ओर ध्यान दो।

—हेनरी फोर्ड

: ३६ :

दान-परोपकार

१

परोपकाराय सतां विभूतयः।

—कालिदास

—सज्जनों की विभूतियां परोपकार के लिए ही होती हैं।

२

आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।

—मेघदूत

—सत्पुरुषों की संपत्ति का यही फल है कि विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के दुःखों को दूर करें।

३

केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु।

—मेघदूत

—सत्पुरुषों से किसकी प्रार्थना सफल नहीं हुई।

४

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधःस्थितिः ।।

—दान करने से गौरव प्राप्त होता है, धन का संचय करने से नहीं । जल दान करनेवाले मेघ की स्थिति सबके ऊपर है और जल का संचय करने वाले समुद्र की नीचे ।

५

परोपकारशून्यस्य धिङ् मनुष्यस्य जीवितम् ।
धन्यास्ते पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति ।।

—परोपकार-रहित मनुष्य के जीवन को धिक्कार है । उससे तो वे पशु ही धन्य हैं जिनका चमड़ा भी दूसरों के काम आता है ।

६

उपकुर्यान्निराकाङ्क्षो यः स साधुरितीर्यते ।
साकांक्षमुपकुर्याद्यः साधुत्वे तस्य को गुणः ।।

—स्कंदपुराण

—जो निस्वार्थ भाव से किसीका उपकार करता है, वही साधु कहलाता है जो बदले में किसी वस्तु की आकांक्षा करके उपकार करता है, उसकी साधुता में कौन गुण है !

७

यद्यपि चंदन-विटपी फल-पुष्प-विर्वाजितः कृतो विधिना ।
निज-वपुषैव तथापि हि संहरति सन्तापं परेषाम् ।।

—गोवर्द्धनाचार्य

—विधाता ने चंदन के वृक्ष को फल-पुष्प से रहित बनाया है, फिर भी वह अपने शरीर से ही दूसरों का संताप मिटाता है ।

८

सहस्त्रशक्तिश्च शतं शतशक्तिर्दशापि च ।
दद्यादापश्च यः शक्त्या सर्वे तुल्यफलाः स्मृताः ।।

—महाभारत

—हजारवाले ने सौ, सौवाले ने दस और किसीने यथाशक्ति थोड़ा-सा जल ही दिया, तो भी सबके दान का फल बराबर है।

९

थोड़ा रहने पर जो दान दिया जाता है, वह हजार के बराबर माना गया है।

—जातक

१०

'दादू' दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो कर दिया न होय॥

११

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥

—कबीर

१२

समुझणहार सुजान, नर मौसर[१] चूकै नहीं।
अवसर रो अहसाण, रहै घणा[२] दिन 'राजिया'॥

१३

तबहीं लगि जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमैं न रुचै रहीम॥

१४

रहिमन वे नर मरि चुके, जो कहुं मांगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मुये, जिन मुख निकसत नाहिं॥

१५

जो स्वयं नहीं भोग सकता, वह प्रसन्न मन से दान भी नहीं कर सकता।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

---

१. मौका। २. बहुत दिन।

: ३७ :

लोक-व्यवहार

१

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।
एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्त्तते ॥

—महाभारत

—जो अपनेको प्रतिकूल अर्थात दुःखदायक प्रतीत हो वैसा व्यवहार दूसरों के साथ न करें। यही संक्षेप में धर्म—धर्म का सार है—अन्य व्यवहार स्वार्थमूलक हैं ।

२

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेशवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचिरेदिह ॥

—मनु

—आयु, क्रिया, धन, विद्या और कुल के अनुरूप वेश, वचन और बुद्धि रखता हुआ संसार में रहे ।

३

यदन्येषां हितं न स्यात् आत्मनः कर्म पौरुषम् ।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात् कथंचन ॥

—महाभारत

—हमारे जिस कर्म से लोगों का हित नहीं हो सकता, अथवा जिसके करने में स्वयं अपने ही को लज्जा मालूम होती है, वह कभी नहीं करना चाहिए ।

४

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

—धम्मपद

—वैर कभी वैर से शांत नहीं होता, अवैर से ही शांत होता है—यही लोक का सनातन नियम है ।

५

जयं वेरं पसवति, दुक्खं सेति पराजितो ।
उपसन्तो सुखं सेति, हित्वा जय-पराजयं ।।

—धम्मपद

—विजय से वैर उत्पन्न होता है, पराजित व्यक्ति दुःख की नींद सोता है। जय-पराजय दोनों से उदासीन मनुष्य सुख-शांतिपूर्वक सोता है।

६

अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्चमनुसासति ।
सुदन्तोवत तम्मेय अत्ता हि किर दुद्दमो ।।

—धम्मपद

—मनुष्य पहले स्वयं वैसा करे जैसाकि वह दूसरों को उपदेश देता है। अपने को दमन करने में समर्थ व्यक्ति ही दूसरों का भी दमन कर सकता है। वास्तव में, अपना दमन करना ही कठिन है।

७

परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति वै ।
विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते ।।

दूसरों को उपदेश देते समय सभी शिष्ट बन जाते हैं, परंतु अपने कार्य के उपस्थित होने पर शिष्टता भूल जाते हैं।

८

विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदा बुधः ।
विवाहश्च विवादश्च तुल्यशीलै र्नृपेष्यते ।।

—विष्णुपुराण

—बुद्धिमान् मनुष्य कभी उत्तम और अधम व्यक्तियों से विरोध न करे। विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियों से ही होना चाहिए।

९

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ।।

—महाभारत

—मनुष्य को सर्प, अग्नि, सिंह और अपने बंधु-बांधव की अवहेलना न करनी चाहिए क्योंकि ये सभी अत्यंत तेजस्वी होते हैं।

१०

कलहान्तानि हर्म्याणि, कुवाक्यान्तं च सौहृदम् ।
कुराजान्तानि राष्ट्राणि, कुकर्मान्तं यशो नृणाम् ।।

—कलह से मनुष्यों के घर नष्ट हो जाते हैं, कुवाक्य बोलने से मित्रता नष्ट हो जाती है, बुरे शासक से राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं और कुकर्म से मनुष्य का यश नष्ट हो जाता है।

११

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हन्ति स दूरतः ।।

—बुद्धिमान् का अपकार करने के बाद अपनेको उससे दूर समझकर निश्चित न होना चाहिए। बुद्धिमान् के हाथ लंबे होते हैं, उनसे वह दूर से ही प्रहार कर सकता है।

१२

बलोपपन्नोऽपि हि बुद्धिमान्नरः
परं नयेन्न स्वयमेव वैरिताम् ।
भिषङ् ममास्तीति विचिन्त्य भक्षये—
दकारणात्को हि विचक्षणो विषम् ।।

—स्वयं सामर्थ्यवान् होकर भी बुद्धिमान् मनुष्य दूसरे को अपना शत्रु न बना ले। मेरा चिकित्सक है, ऐसा सोचकर भला कौन समझदार आदमी अकारण विष खाता है।

१३

यस्य यस्य हि यो भावस्तेन तेन हितं नरम् ।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत् ।।

—हितोपदेश

—जिस-जिस मनुष्य का जो स्वभाव है उसी-उसी भाव से उसका अनुवर्ती होकर बुद्धिमान् मनुष्य उसको शीघ्र अपने वश में कर ले।

१४

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥

—महाभारत

—अकेले स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेले किसी गूढ़ विषय में विचार न करे, अकेला रास्ता न चले और बहुत-से लोग सोये हों तो उनमें अकेला जागता न रहे।

१५

बलीयसा समाक्रान्तो वैतसीं वृत्तिमाचरेत् ।

—पंचतंत्र

—बलवान् से आक्रांत होने पर मनुष्य को बेंत की रीति-नीति का अनुकरण करना चाहिए—अर्थात् नम्र हो जाना चाहिए।

१६

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम्,
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जाः तिष्ठन्ति पादपाः ॥

—चाणक्य

—बहुत सीधा न होना चाहिए। वन में जाकर देखो, वहां सीधे वृक्ष ही काटे जाते हैं, टेढ़े वृक्ष खड़े अर्थात् सुरक्षित रहते हैं।

१७

अनायके न वस्तव्यं न वसेद् बहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्यं न वसेद्बालनायके ॥

—जहां कोई मालिक न हो या बहुत-से मालिक हों अथवा स्त्री या बालक मालिक हों वहां नहीं रहना चाहिए।

१८

नोपकारं विना प्रीतिः कथञ्चित्कस्यचिद् भवेत् ।
उपयाचितदानेन यतो देवा अभीष्टदाः ॥

—उपकार के बिना कहीं भी किसीकी प्रीति नहीं होती है। उपयाचित्त दान अर्थात् मनौती मानने से ही देवता भी अभीष्ट फलदायक होते हैं।

१९

तावत्प्रीतिर्भवेल्लोके यावद्दानं प्रदीयते ।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ।।

—जबतक दान दिया जाता है, तभी तक संसार में—देनेवाले के प्रति—प्रीति होती है । बछड़ा दूध का बंद होना देखकर गाय को छोड़ देता है ।

२०

न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित्स्वल्पमप्यहो ।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः ।।

—पंचतंत्र

—बुद्धिमान् मनुष्य अपना थोड़ा धन भी किसीको न दिखाये क्योंकि उसके दर्शन से मुनि का मन भी लोभ से चंचल हो जाता है ।

२१

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ।।

—चाणक्य

—बुद्धिमान मनुष्य अपने धन-नाश, मनस्ताप, घर के दुश्चरित और धोखा खाने तथा अपमान की बातों को गुप्त रख ।

२२

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत् ।
अन्यलक्षितकार्यस्य यतः सिद्धिर्न जायते ।।

—चाणक्य

—मन में सोचे हुए कार्य की दूसरों से चर्चा न करे । जिस काम को दूसरे लोग जान जाते हैं, उसमें सफलता नहीं मिलती ।

२३

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णं वर्जयेत्सुधीः ।

—पंचतंत्र

—गुप्त बात छह कानों में पड़ने से खुल जाती है, चार कानों में अर्थात् दो आदमियों के बीच में—स्थिर रहती है, इधर-उधर नहीं फैलती। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि उसे छह कानों में न पड़ने दे।

२४

याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

—मेघदूत

—सत्पुरुष से याचना का निष्फल होना भी अच्छा है, पर नीच से उसका सफल होना भी अच्छा नहीं है।

२५

ऋद्धियुक्ता हि पुरुषाः न सहन्ते परस्तवम्।

—रामायण

—एश्वर्यशाली पुरुष अपने सामने दूसरे की प्रशंसा नहीं सह सकते।

२६

अत्यादरो भवेद्यत्र कार्य-कारण-वर्जितः।
तत्र शङ्का प्रकर्त्तव्या परिणामेऽसुखावहा॥

—जहां अकारण अत्यंत आदर-सत्कार हो, वहां परिणाम में दुःख की आशंका करनी चाहिए।

२७

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्संरब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पंडितम्॥

—लोभी को धन देकर, क्रोधी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उसकी इच्छा के अनुसार काम करने की सुविधा देकर और बुद्धिमान को यथार्थ बात बताकर वश में करना चाहिए।

२८

शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः।

—कुमारसंभव

—दुर्जन लोग बुराई के बदले बुराई से ही शांत होते हैं, भलाई से नहीं।

२९

नेव दुट्ठे नयो अत्थि न धम्मो न सुभासितं।
निकम्मं दुट्ठे युज्जेथ सोच सब्भि न रञ्जति ॥

—जातक

—दुष्ट आदमी के लिए न न्याय है, न धर्म है और न सुभाषित है। दुष्ट से तो पराक्रम ही करे। वह सद्व्यवहार से प्रसन्न नहीं होता।

३०

असती भवति सलज्जा, क्षारं नीरं च निर्मलं भवति।
दंभीभवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्तजनः ॥

—कुलटा स्त्री लज्जा-संकोच दिखाती है, खारा पानी स्वच्छ होता है, पाखंडी आदमी विवेकी बनता है और धूर्त मधुरभाषी होता है।

३१

उद्योगे नास्ति दारिद्रयं, जपतो नास्ति पातकम्।
मौने च कलहो नास्ति, नास्ति जागरिते भयम् ॥

—चाणक्य

—उद्योग से दरिद्रता नहीं रहती, जप से पाप नहीं रहता, मौन रहने से कलह नहीं होता और जागते रहने से भय नहीं होता।

३२

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्माच्चिरात् दृश्यसे।
का वार्त्ता कुशलोऽसि बालसहितः प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ॥
एवं ये समुपागतान्प्रणयिनः प्रह्लादयन्त्यादरात्।
तेषां युक्तमशंकितेन मनसा हर्म्याणि गन्तुं सदा ॥

—पधारिये, यह आसन है, इसपर विराजिये, बहुत दिनों बाद दिखाई पड़े! क्या हाल चाल है! बाल-बच्चों-सहित सकुशल तो हैं! मैं आपके दर्शन से बहुत प्रसन्न हुआ! इस प्रकार जो घर पर आये हुए का स्वागत-सत्कार करता है, उसके घर सदा निःशंक मन से जाना चाहिए।

३३

नानक नन्हें ह्वै रहो, जैसे नन्हीं दूब ।
घास-पात सब जरि गये, दूब खूब की खूब ।।

३४

तिनका कबहुं न निंदिये, जो पायँन तर होय ।
कबहुंक उड़ि आंखिन परै पीर घनेरी होय ।।

—कबीर

३५

निर्बल को न सताइये, मोटी जाकी हाय ।
मुई खाल की सांस ते, सार भसम ह्वै जाय ।।

—कबीर

३६

जो तोकूं कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल ।
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल ।।

—कबीर

३७

आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ।।

३८

रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखै गोय ।
हँसिहैं लोग जहान के बाँटि न लैहै कोय ।।

३९

रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेय ।
जाहि निकारे गेह तें, कस न भेद कहि देय ।।

४०

कलह न जानब छोटकर, कलह कठिन परिनाम ।
लगत अगिन अति नीच घर, जरत धनिक धन धाम ।।

—तुलसी

४१

खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर, सुहृद बंधु कियो काल।।

—तुलसी

४२

सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
तो पै तिन्हके जाहिं घर, जिनके हिये न नैन।।

—तुलसी

४३

प्रीति विरोध समान सन, करिय नीति असि आहि।
जो मृगपति बध मेडुकहिं, भल कि कहइ कोउ ताहि।।

—तुलसी

४४

काटेइ पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेस सुनु, डांटेहि पै नव नीच।।

—तुलसी

४५

बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति।।

—तुलसी

४६

अवसर कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिये का लाख।
दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख।।

—तुलसी

४७

बंधु-बधूरत कहि किये, बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की, चितई कछु न कुचाल।।

—तुलसी

४८

चरन चोंच लोचन रंग्यो, चलत मराली चाल।
छीर-नीर-बिबरन समय, बक उघरत तेहि काल॥

—तुलसी

४९

करि हंस को बेष बड़ो सबसों,
तजि दे बक, बायस की करनी।

—तुलसी

५०

दानि कहाउब औ कृपनाई।
होइ कि खेमकुसल रौताई॥

—तुलसी

—दानी कहलाना और कंजूसी भी करना तथा ठकुराई दिखलाना और क्षेमकुशल भी चाहना यह साथ-साथ कैसे हो सकता है।

५१

नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस, धनु, उरग बिलाई॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

—तुलसी

५२

बहुत सुधाइहु तें बड़ दोषू।

—तुलसी

५३

अनुचित उचित काज कछु होऊ।
समुझि करिय भल कह सब कोऊ॥

—तुलसी

५४

दुइ न होइ यक संग भुआला।
हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥

—तुलसी

५५

नाथ बैर कीजिय ताही सों ।
बुधि बल सकिय जीति जाही सों ।।

—तुलसी

५६

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आगि को, दीपहिं देत बुझाय ।।

—वृंद

५७

'गिरिधर' तहां न बैठिये, जहं कोउ देइ उठाय ।

५८

चिथड़े का निरादर मत करो, क्योंकि उसने भी किसी समय किसीकी लाज रखी थी ।

—शेख सादी

५९

लोगों के छिपे हुए ऐब ज़ाहिर मत करो । इससे उनकी इज़्ज़त तो ज़रूर घट जायगी, मगर तेरा तो एतबार ही उठ जायगा ।

—शेख सादी

६०

दो विरोधियों के बीच में इस प्रकार बात करो कि कभी यदि वे मित्र हो जायं तो तुम्हें लज्जित न होना पड़े ।

—शेख सादी

६१

जब तू कानों के देश में पहुंचे तो तू भी अपनी एक आंख बंद कर ले ।

—शेख सादी

६२

दो बातें मानसिक दुर्बलता प्रकट करती हैं—एक तो बोलने के अवसर पर चुप रहना; दूसरे, चुप रहने के अवसर पर बोलना।

—शेख़ सादी

६३

यदि मैं अंधे को कुएं के सामने देखूं, तो मेरा चुप बैठना पाप है।

—शेख़ सादी

६४

लकड़ी टेढ़ी है, इसको सीधी करने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि उसके पास एक सीधी लकड़ी रख दी जाय। वाद-विवाद या व्यर्थ की बकवास से यह तरीक़ा ज़्यादा कारगर है।

—वाल्टेयर

६५

बड़ा आदमी छोटे आदमियों के साथ जिस ढंग से व्यवहार करता है, उसीसे उसका बड़प्पन प्रकट होता है।

—कार्लाइल

६६

जो शस्त्र उठाता है, उसका अंत भी शस्त्र के ही द्वारा होता है।

—राल्फ़ वाल्डो ट्राइन

६७

दूसरों के गुण और अपने अवगुण ढूंढ़ो।

—बेंजामिन फ्रैंकलिन

६८

मैंने यह हमेशा देखा है कि दुनिया में कामयाब होने के लिए आदमी को ऊपर से मूर्ख जैसा बने रहना चाहिए, पर वास्तव में बुद्धिमान् होना चाहिए।

—मांटेस्क्यू

६९

इस पृथ्वी पर एक ख़ास तरह के आदमी हैं जो मानो फूस की आग हैं। वे झट-से जल उठते हैं, फिर चटपट बुझ भी जाते हैं। उन लोगों के पीछे सदा-सर्वदा एक आदमी रहना चाहिए जो आवश्यकतानुसार उनके लिए फूस जुटा दिया करें।

—शरच्चंद्र चटर्जी

७०

कुछ लोगों की दशा चक्की के समान होती है, वे पीसते दूसरों को हैं और चिल्लाते स्वयं हैं।

—रामकृष्ण परमहंस

७१

दीपक को उसके प्रकाश के लिए धन्यवाद दो, परंतु जो दीपक लिये हुए अँधेरे में स्थिरता और धैर्य के साथ खड़ा हुआ है, उसे मत भूल जाओ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

७२

हमारा सबसे बड़ा सौभाग्य तब आता है, जब पराये अपने हो जाते हैं और सबसे बड़ा दुर्भाग्य या संकट तब आता है, जब अपने पराये हो जाते हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

७३

जो किसीको डराता नहीं, वह किसीसे डरता भी नहीं। जो औरों को डराते हैं, वे ही दूसरों से डरते हैं।

—मो. क. गांधी

७४

जिसने कुछ एहसां किया, इक बोझ हम पर रख दिया।
सर से तिनका क्या उतारा, सिर पै छप्पर रख दिया।।

—चकबस्त

७५

मुसीबत का हर इक से अहवाल कहना।
मुसीबत से है यह मुसीबत जियादा ॥

—हाली

७६

जो खुशामद करे खुल्क उससे सदा राजी है।
सच तो यह है कि खुशामद से खुदा राजी है ॥

—नजीर

: ३८ :

संभाषण

१

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

—प्रिय वचन बोलने से सभी प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए सदा प्रिय वचन ही बोलना चाहिए। बोलने में क्या दरिद्रता!

२

मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता।

—नैषध

—थोड़ा और सारयुक्त बोलना ही वाग्मिता है।

३

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।

—भारवि

—हितकर एवं प्रिय वचन दुर्लभ हैं।

४

यो मुखसञ्जतो भिक्खु मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥

—धम्मपद

—जो वाणी का संयमी है, मनन करके बोलता है, विनयी है, अर्थ-धर्म को प्रकाशित करता है उसका भाषण मधुर होता है।

५

यथापि रुचिरं पुप्पं वण्णवंतं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति सकुब्बतो॥

—धम्मपद

—जिस प्रकार सुंदर पुष्प वर्णयुक्त तथा गंधयुक्त होने से सफल होता है, उसी प्रकार कथनानुसार कार्य करनेवाले मनुष्य की सुभाषित वाणी सफल होती है।

६

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवंतं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो॥

—धम्मपद

—जिस प्रकार सुंदर पुष्प वर्णयुक्त होने पर भी गंधहीन होने के कारण व्यर्थ होता है, वैसे ही कथनानुसार कार्य न करनेवाले मनुष्य की वाणी निष्फल होती है।

७

सुभाषितमयद्रव्यसंग्रहं न करोति यः।
स तु प्रस्तावयज्ञेषु कां प्रदास्यति दक्षिणाम्॥

—जो मनुष्य सुभाषित-रूपी द्रव्य का संग्रह नहीं करता वह प्रस्ताव-यज्ञ में क्या दक्षिणा देगा—अर्थात् सभ्य समाज में कोई प्रसंग छिड़ने पर किस बात से लोगों को संतुष्ट करेगा।

८

सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं नासमंजसम्।

—महाभारत

—सभा में या तो जाय ही नहीं और यदि जाय तो ठीक-ठीक बोले—गोलमोल और बेसिरपैर की बात न कहे।

९

शत्रोरपि गुणा वाच्याः, दोषा वाच्याः गुरोरपि ।

—शत्रु के भी गुण और गुरु के भी दोष कह देने चाहिए।

१०

वक्तारो दर्दुरा यत्र तत्र मौनं हि शोभते ।

—जहां अनर्गल प्रलाप करनेवालों का बोलबाला हो वहां चुप रहना ही अच्छा है।

११

कोलाहले काककुलस्य जाते
विराजते कोकिलकूजितं किम् ।
परस्परं संवदतां खलानां,
मौनं विधेयं सततं सुधीभिः ।।

—कौवों के कांव-कांव में कोकिल के मधुर कूजन की क्या सुनवाई होगी! मूर्खों के परस्पर वार्तालाप या बक-झक करते समय बुद्धिमानों को सदा मौन धारण करना ही उचित है।

१२

मीठी ज़बान, प्रेम और ख़ुशी से तू हाथी को एक बाल से खींच सकता है।

—शेख़ सादी

१३

बोली तो अनमोल है, जो कोई जानै बोल ।
हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहेर खोल ।।

—कबीर

१४

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै, आपौ सीतल होय ।।

—कबीर

१५

सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि।

—तुलसी

१६

बातहिं ते बनि आवही, बातहिं ते बन जात।
बातहिं ते बर बर मिलत, बातहिं ते बौरात ॥

—तुलसी

१७

बात बिना अतिसय बिकल, बातहिं ते हरखात।
बनत बात बर बात तें, करत बात बर घात ॥

—तुलसी

१८

बातहिं बातहिं बनि परै, बातहिं बात नसाय।
बातहिं आदिहि दीप भव, बातहिं अंत बुझाय ॥

—तुलसी

१९

पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै देर।
सुमति बिचारे बोलिये, समुझि कुफेर सुफेर ॥

—तुलसी

२०

तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुं ओर।
बसीकरन इक मंत्र है, परिहरु बचन कठोर ॥

—तुलसी

२१

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तिन तीनि कर, होंहिं बेगि ही नास ॥

—तुलसी

२२

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिँगार न सुहात ।।

—वृंद

२३

हँसिये ना हहराय बात पूछें तें कहिये ।

—गिरिधर

२४

क्या बने बात जब बात बनाये न बनै ।

—ग़ालिब

२५

बात रह जाती है, बक्त गुज़र जाता है ।

२६

प्रत्येक मनुष्य की बात सुनो, पर अपनी बात कम सुनाओ ।

—शेक्सपियर

: ३९ :

दुर्व्यसन

१

यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति ।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति ।।
सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ।।

—धम्मपद

—जो मनुष्य प्राणि-हिंसा करता है, मिथ्याभाषण करता है, पराये धन का अपहरण करता है और परस्त्रीगमन तथा मद्यपान करता है—वह यहीं इसी लोक में अपनी जड़ खोदता है ।

२

काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं,
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीवे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता,
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥

—क्षेमेन्द्र

—कौवे में पवित्रता, जुआरी में सत्य, सर्प में सहनशीलता, स्त्रियों में कामवासना की शांति, नपुंसक में धैर्य, मद्यप में तत्त्वचिंता और राजा का मित्र होना किसने देखा या सुना है !

३

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥

—महाभारत

—सोकर नींद को जीतने का प्रयत्न न करें, भोग-द्वारा स्त्री को वश में करने का प्रयत्न न करें, ईंधन से आग को बुझाने का प्रयत्न न करें और अधिक पीकर मद्य के दुर्व्यसन को शांत करने का प्रयत्न न करें।

४

संग तें जती कुमंत्र तें राजा ।
मान दे ज्ञान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनयबिनु मद तें गुनी ।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

—तुलसी

५

ब्यालहुं तें बिकराल बड़, ब्यालफेन जिय जानु ।
वहि के खाये मरत हैं, वह खाये बिनु प्रानु ॥

—तुलसी

६

क़दम रखना सम्हल कर महफ़िले रिन्दां[१] में ऐ ग़ालिब।
यहां पगड़ी उछलती है इसे मैख़ाना[२] कहते हैं।

७

मै उन्होंने पी अब उनके पास क्योंकर दिल लगे।
जानवर इक रह गया इन्सान रुख़सत हो गया ॥

—अकबर

८

शराब पीना और कुछ नहीं, केवल अपनी इच्छा से पागल बनना है।

—सेनेका

९

शराब का एक प्याला मनुष्य को बुद्धिहीन बनाता है, दूसरा प्याला पागल बना देता है और तीसरा डुबो देता है, अर्थात् चेतनाहीन बना देता है।

—शेक्सपियर

१०

आदमी पहले शराब पीता है, फिर शराब शराब को पीती है—अर्थात् बार-बार पीने की इच्छा होती है और अंत में शराब आदमी को ही पीने लगती है।

—एक जापानी लोकोक्ति

११

तमाखू तो ऐसी चीज़ है कि कोई मुफ्त में दे तो भी नहीं लेनी चाहिए, लेकिन आज तमाखू के दाम देने पड़ते हैं और वह भी चावल से अधिक। जो तमाखू की कीमत चावल से ज़्यादा देते हैं, उनकी अक्ल क्या होगी!

—विनोबा

---

[१]मनमौजी, [२]शराबखाना

: ४० :

आशा

१

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।

—आशा ही परम दुःख और निराशा ही परम सुख है ।

२

हते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे वा त्रिदिवं गते ।
आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।।

—महाभारत

—महाभारत के युद्ध में—भीष्म हार गये, द्रोण मारे गये और कर्ण भी स्वर्ग को चले गये; फिर भी दुर्योधन को यह आशा बनी ही रही कि शल्य पाण्डवों को जीत लेगा। आशा सचमुच बलवती है।

३

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा तरङ्गाकुला ।
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्ग चिन्तातटी ।
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ।।

—भर्तृहरि

—आशा नाम की एक नदी है जिसमें मनोरथ-रूपी जल भरा है, तृष्णा-रूपी तरंगें हैं, राग-रूपी मगर और वितर्क-रूपी अनेक पक्षी हैं। वह धैर्य-रूपी तट के वृक्षों को ढहानेवाली है। उसमें मोह-रूपी भंवर हैं, जिनके कारण वह अत्यंत दुस्तर और गंभीर है। उसके चिंता-रूपी ऊंचे-ऊंचे कगारे हैं। उस मोह-नदी के पार पहुंचे हुए विशुद्ध चित्त योगीश्वर ही आनंद पाते हैं।

४

ऐसे भये तो कहा तुलसी,
जो पै आस न मारि के आसनी मारी ।।

५

यहि आसा अटक्यो रह्यो, अलि गुलाब के मूल ।
ह्वैहै बहुरि बसंत ऋतु, इन डारन वे फूल ।

—बिहारी

६

दुःखार्त्त प्राणी के लिए आशा के अतिरिक्त अन्य कोई औषधि नहीं है।

—शेक्सपियर

७

आशा ही एक ऐसी चीज़ है जो सबके पास मिल सकती है। जिसके पास और कुछ नहीं होता, उनके पास भी आशा तो रहती ही है।

—थेल्स

८

जहां कोई आशा नहीं होती वहां कोई उद्योग भी नहीं होता।

—जॉनसन

९

जिस चीज़ से आशा बढ़ती है, उससे साहस भी बढ़ता है।

—जॉनसन

१०

जो केवल आशा के बल पर जीता है, वह भूखों मरेगा।

—फ्रैंकलिन

: ४१ :

दिनों का फेर

१

पांचों नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर ख़ाली पड़ा, बोलन लागे काग।।

—कबीर

२

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छांह गंभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़, कंज, करीर ।।

३

ज्यों रहीम दीपक-दसा, तिय राखत पट-ओट ।
समय परे पर होति है, वाही पट की चोट ।।

४

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ।।

५

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कटीली डार ।।

—बिहारी

६

रे मन साहसी, साहस राखु,
सुसाहस सों सब जेर फिरैंगे ।
ज्यों 'पदमाकर' या सुख में दुख,
त्यों दुख में सुख सेर फिरैंगे ।।
सेइ वेणु बजावत स्याम,
सुनाम हमारो हू टेर फिरैंगे ।
एक दिना नहिं एक दिना,
कबहूँ फिर वे दिन फेर फिरैंगे ।।

७

मूसा कहे बिलार सों, सुन रे जूठ जुठैल !
हम निकसत हैं सैर को, छाँड़ि बैठ मेरी गैल ।।
छाँड़ि बैठि मेरी गैल, कचरि लातन सो जैहौ ।
तुम हौ निपट गरीब कहा घर बैठे खैहौ ।।

कह गिरिधर कबिराय, बात सुनियो रे हूसा ।
वाह दिनन के फेर बिलारिहि सिखवै मूसा ।।

८

न इतराइये देर लगती है क्या,
ज़माने की करवट बदलते हुए !

: ४२ :

वैराग्य

१

कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ।। —धम्मपद

यह हँसना और खुशी मनाना कैसा जब कि चारों ओर नित्य आग लगी है । अंधकार से घिरे होकर भी तुम प्रकाश को क्यों नहीं खोजते !

२

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहित लेपनं ।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ।।

—धम्मपद

—शरीर अस्थियों का नगर है, जिसे मांस और रक्त से लेपा गया है । उसमें बुढ़ापा, मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं ।

३

भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।

—भर्त्तृहरि

—भोगों को हमने नहीं भोगा, भोगों ने ही हमें भोग लिया । हमने तप नहीं किया, हम स्वयं ही तप्त हो गये । काल नहीं व्यतीत हुआ, हम

स्वयं व्यतीत हो गये। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, पर हम जीर्ण हो गये।

४

मा कुरु धन-जन-यौवन-गर्वम्
हरति निमेषात् कालः सर्वम् ॥

—शंकराचार्य

—धन, जन, यौवन का गर्व मत करो; काल क्षणमात्र में सबकुछ नष्ट कर देता है।

५

तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्राण से बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥

—कबीर

६

प्रान कहै सुन काया मेरी,
हम तुम मिलन न होय।
तुम सम मीत बहुत हम कीना,
संग न लीना कोय ॥

—कबीर

७

ऐसा कोऊ ना मिला जासों रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया अपनी-अपनी आग ॥

—कबीर

८

इक दिन ऐसा होइगा कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहि ॥

—कबीर

९

चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइकै साबुत गया न कोय ॥

१०

आस पास जोधा खड़े सबै बजावैं गाल ।
मांझ महल से लै चला ऐसा काल कराल ।।

—कबीर

११

माली आवत देखि के, कलियां करीं पुकार ।
फूले-फूले चुनि लिये, काल्हि हमारी बार ।।

—कबीर

१२

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरैं ज्यों घास ।
सब जग जरता देखि के, भये कबीर उदास ।।

१३

सुक ने कह्यो संदेस सेमर के पग लागियो ।
पग न परइ वहि देस जब सुधि आवै फलन की ।।

—गिरधर

१४

हंसा उड़ि दिसि कहं चले सरवर मीत जुहार ।
हम-तुम कबहुंक भेंटिहैं, संदेसन ब्यवहार ।।
संदेसन ब्यवहार सदा जल पूरन लहियो ।
सुख संपति धन राज्य सदा सब भोगत रहियो ।।
कह गिरधर कबिराय केलि की रही न मंसा ।
दै असीस उड़ि चले देस अपने को हंसा ।।

१५

दुनिया की महफ़िलों से उकता गया हूं या रब[1] !
क्या लुत्फ़ अंजुमन में जब दिल ही बुझ गया हो !

—इक़बाल

---

[1] भगवान

१६

गुज़र की जब न हो सूरत, गुज़र जाना ही बेहतर है।
हुई जब ज़िंदगी दुशवार, मर जाना ही बेहतर है।।

—अकबर

१७

दुनिया में हूं दुनिया का तलबगार नहीं हूं।
बाज़ार से गुज़रा हूं खरीदार नहीं हूं।।
वह गुल हूं ख़िज़ां ने जिसे बरबाद किया है।
उलझूं किसी दामन से मैं वो खार नहीं हूं।। —अकबर

: ४३ :

संसार

१

क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः।
क्वचिद्वीणावादः क्वचिदपि च हा हेति रुदितम्।।
क्वचिद्रम्या रामा क्वचिदपि जराजर्जरतनु–
र्न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः।।

—भर्तृहरि

—कहीं विद्वानों की गोष्ठी होती है तो कहीं मदोन्मत्त लोगों का ऊधम दिखाई पड़ता है; एक ओर वीणा का नाद सुनाई पड़ता है, दूसरी ओर हाहाकार के साथ क्रंदन मचा है। कहीं सुंदरी रमणी और कहीं जरा-जीर्ण शरीरवाले मिलते हैं। पता नहीं यह संसार अमृतमय है या विषमय।

२

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः,
शुष्कं सरः सारसाः।
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपाः,

दग्धं वनान्तं मृगा: ॥
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका:,
भ्रष्टश्रियं मन्त्रिण: ।
सर्वं कार्यवशाज्जनोऽभिरमते,
कस्यास्ति को वल्लभ: ॥

—पक्षी फलहीन वृक्ष को, सारस सूखे तालाब को, भौंरे बासी फूल को, जीव-जंतु दग्ध वन को, वेश्या धनहीन पुरुष को और मंत्री वैभवहीन राजा को त्याग देते हैं। सब स्वार्थवश ही दूसरों से प्रेम करते हैं। कौन किसका प्रिय है !

३

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्री: ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥

—रात में मुंदी हुई कमलिनी के भीतर बैठा हुआ एक भौंरा इस प्रकार सोच रहा था कि रात बीतेगी, सुंदर प्रभात होगा, सूर्य उदय होगा, कमल खिल उठेंगे . . . . . इतने ही में दुःख है कि एक हाथी ने उस कमलिनी को उखाड़कर फेंक दिया।

४

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषा: स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम् ॥

—महाभारत

—नित्य-नित्य प्राणी यमलोक को जा रहे हैं। फिर भी, बचे हुए प्राणी संसार में बने रहना चाहते हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा !

५

यहु ऐसा संसार है, जैसे सेमर फूल ।
दिन दस के व्यवहार को, झूठे रंग न भूल ॥

—कबीर

६

दिनरात मुसाफिर जात चला।

.. ..

जिनका चलना रैन सवेरा, सो कत गाफ़िल रहत परा।

—कबीर

७

तुलसी यहि संसार में भांति भांति के लोग।
सबसों हिलि मिलि चालिये नदी-नाव-संजोग॥

८

चलौं-चलौं सब कोइ कहै, पहुंचे बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय॥

—तुलसी

९

को छूट्यो इहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों-त्यों उरझत जात॥

—बिहारी

१०

जाथल कीन्हें बिहार अनेकन,
ताथल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन,
ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
'आलम' जौन से कुंजन में करी,
केलि तहां अब सीस धुन्यो करैं।
आंखिन में जो सदा रहते,
तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

११

मत सहल हमें जानों फिरता है फ़लक[१] बरसों।
तब ख़ाक के परदे से इन्सान निकलते हैं॥

—मीर

१२

दुनिया ही में मिलते हैं हमें दोज़खो-जन्नत[२]।
इन्सान ज़रा सैर करे घर से निकल कर॥

—दाग

१३

खबरदार ऐ मुसाफ़िर ! खौफ़ की जाराहे-हस्ती[३] है।
ठगों का बैठका है जा-बजा[४] चोरों की बस्ती है॥
इस सरा में हूं मुसाफ़िर, नहीं रहने आया।
रह गया थक के अगर आज तो कल जाऊंगा॥

—अमीर

१४

दो दिन की शान हर कोई दिखला के मर गया।
जीता रहा न कोई हर इक आके मर गया॥

—नज़ीर

१५

सब रह गये जो साथ के साथी थे 'नज़ीर' आह।
आखिर के तईं हंस अकेला ही सिधारा॥

१६

खूं के दरिया बह गये आलम तहोबाला हुए।
ऐ सिकंदर ! किसलिए ? दो गज जमीं के वास्ते॥

—ज़ौक

---

[१] आकाश [२] नरक-स्वर्ग [३] जीवन-मार्ग [४] जगह-जगह

१७

तू तो हंसता हुआ चला गया ग़ालिब ।
मगर हम आज अब भी रोते हैं ॥

१८

कमर बांधे हुए चलने को यां सब यार बैठे हैं ।
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं ॥

—इन्शा

१९

ज़िंदगी है या कोई तूफ़ान है ।
हम तो इस जीने के हाथों मर चले ॥

—दर्द

२०

कोई इन फूलों की क़िस्मत देखना ।
ज़िंदगी कांटों में पल कर रह गई ॥

२१

कल तो कहते थे कि बिस्तर से उठा जाता नहीं ।
आज दुनिया से चले जाने की ताक़त आ गई ॥

२२

कौन हमदर्द किसका है जहां में अकबर ।
इक उभरता है यहां एक के मिट जाने से ॥

२३

शादियो ग़म में जहां के एक से दस का है फर्क़ ।
ईद के दिन हँसिये तो दस दिन मोहर्रम रोइये ॥

—अकबर

२४

दुनिया यों ही नाशादियों में शाद रहेगी ।
बरबाद किये जायगी आबाद रहेगी ॥

—अकबर

२५

बताती है 'मज़हर' यही दिल की हरकत।
मेरा कारवां धीरे-धीरे रवां है॥

२६

आलगा 'हाली' किनारे पर जहाज़।
अलविदा ऐ ज़िंदगानी अलविदा॥

: ४४ :

प्रश्नोत्तर

१

किं मरणं ? मूर्खत्वं, किं चानर्घ्यं ? यदवसरे दत्तम्।
आमरणात् किं शल्यं ? प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यं॥

—अमोघवर्ष (प्रश्नोत्तरमाला)

प्रश्न	उत्तर
१. मरण क्या है ?	१. मूर्खता
२. अमूल्य क्या है ?	२. समय पर दिया हुआ दान—समयोचित सहायता।
३. जीवन भर कांटे की तरह क्या चुभता है ?	३. छिपकर किया गया पाप।

२

किं दारिद्र्यमसन्तोष एव किं लाघवं याञ्चा।

—अमोघवर्ष

प्रश्न	उत्तर
१. दारिद्रय क्या है ?	१. असंतोष।
२. तुच्छता क्या है	२. याचना।

दूसरे शब्दों में—असंतोष मनुष्य की दीनता का परिचायक है और याचना करना हीनता का।

३

कोऽन्धो ? योऽकार्यरतः, को बधिरो ? यः श्रृणोति न हितानि।
को मूको ? यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥

—अमोघवर्ष

प्रश्न	उत्तर
१. अंधा कौन है ?	१. जो अकर्मण्य या दुष्कर्म में रत है।
२. बहरा कौन है ?	२. जो हित की बात नहीं सुनता।
३. मूक कौन है ?	३. जो समयानुकूल बात बोलना नहीं जानता।

४

को लाभो गुणिसंगमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः संगतिः।
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः ॥
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं।
विद्या, किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥

—भर्तृहरि

प्रश्न	उत्तर
१. लाभ क्या है ?	१. गुणी जनों की संगति।
२. हानि क्या है ?	२. समय पर चूकना।
३. निपुणता क्या है ?	३. धर्म-तत्त्व में प्रीति होना।
४. शूर कौन है ?	४. जिसने इंद्रियों को जीत लिया है।
५. सबसे प्रिय क्या है ?	५. पतिव्रता स्त्री।
६. धन क्या है ?	६. विद्या।
७. सुख क्या है ?	७. परदेश न जाना।
८. राज्य क्या है ?	८. आज्ञा का पालन होना।

५

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः।
श्रीमांश्च को यस्य समस्ति तोषः।

जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः ।
किंवाऽमृतं स्यात् सुखदा निराशा ॥

—शंकराचार्य (विवेक-चूड़ामणि)

प्रश्न	उत्तर
१. दरिद्र कौन है ?	१. जो अत्यधिक तृष्णावान है ।
२. श्रीमान् अर्थात संपन्न कौन है ?	२. जिसे पूर्ण संतोष है ।
३. जीते-जी मरे के समान कौन है ?	३. जो उद्यमहीन है ।
४. अमृत क्या है ?	४. सुख देनेवाली आशारहित वृत्ति ।

६

प्रश्न	उत्तर
१. मृत्यु क्या है ?	१. अपयश ।
२. हीनता का मूल कारण क्या है ?	२. याचना ।
३. महत्त्व का हेतु क्या है ?	३. अयाचना
४. विष क्या है ?	४. बड़ों का अपमान ।
५. शत्रु कौन है ?	५. अकर्मण्यता ।
६. अमूल्य क्या है ?	६. समयोचित सहायता ।

—शंकराचार्य

: ४५ :

ज्ञान-सूत्र

(कौटलीय अर्थशास्त्र से)

१

सुखस्य मूलं धर्मः

—धर्म सुख का मूल है ।

२

आपत्सु स्नेहसंयुक्तो मित्रम्

—विपत्ति में भी जो स्नेही बना रहता है—साथ नहीं छोड़ता, वही मित्र है।

३

तृष्णया मतिश्छाद्यते

—तृष्णा से बुद्धि मारी जाती है।

४

इन्द्रियवशवर्त्ती चतुरंगवानपि विनश्यति।

—जो इंद्रियों का दास अर्थात् विषयी है, वह यदि चतुरंगिणी सेना का स्वामी हो तो भी विनाश को प्राप्त होता है।

५

स्वशक्ति ज्ञात्वा कार्यमारंभेत

—अपने शक्ति-सामर्थ्य को जानकर तब किसी काम में हाथ लगाना चाहिए।

६

यमनुजीवेत् तं नापवदेत्

—मनुष्य जिसके द्वारा अपनी जीविका चलाता है उसकी—अर्थात् अपने व्यवसाय की बुराई न करे।

७

अर्थतोषिणं श्रीः परित्यजति

—जो प्राप्त धन से ही संतुष्ट हो जाता है, उसे लक्ष्मी छोड़ देती है।

८

अर्थैषणा न व्यसनेषु गण्यते

—धनोपार्जन में प्रवृत्त होना व्यसन नहीं है।

९

नातप्तलोहो लोहेन संधीयते

—बिना गरम हुए लोहा लोहे से नहीं जुड़ता।

१०

पररहस्यं नैव श्रोतव्यम्

—दूसरों की गुप्त बातों को जानने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

११

यः संसदि परदोषं शंसति स स्वदोषबहुत्वं प्रख्यापयति।

—जो सभा में दूसरों की बुराई करता है, वह अपना ही अधिक दोष प्रकट करता है।

१२

अवमानेनागतमैश्वर्यमवमन्यते साधुः

—अपमान से प्राप्त होनेवाले ऐश्वर्य को सत्पुरुष ठुकरा देते हैं।

१३

बहूनपि गुणानेक दोषो ग्रसति।

—एक दोष बहुत-से गुणों को भी नष्ट कर देता है।

१४

उत्साहवतां शत्रवोऽपि वशीभवन्ति

—उत्साही पुरुषों के शत्रु भी वश में हो जाते हैं।

१५

निरुत्साहाद्दैवं पतति

—निरुत्साह होने से भाग्य भी नष्ट हो जाता है।

१६

अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः

—जो विश्वास के योग्य न हो, उसका विश्वास न करना चाहिए।

१७

आत्मछिद्रं न प्रकाशयेत्

—अपने छिद्र अर्थात् अपनी कमजोरी को कभी प्रकट नहीं करना चाहिए।

१८

दया धर्मस्य जन्मभूमि:

—दया धर्म की जन्म-भूमि है।

१९

कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात्

—अनेक कार्य होने पर उनमें जो सबसे अधिक लाभकारी हो उसीको करना चाहिए।

२०

मूर्खेषु विवादो न कर्तव्य:

—मूर्ख से वाद-विवाद न करना चाहिए।

२१

नास्त्यधीमत: सखा

—बुद्धिहीन मनुष्य का कोई मित्र नहीं होता।

२२

परोऽपि हितश्च बन्धु:

—पराया होकर भी जो हितैषी हो, वह बंधु ही है।

२३

दारिद्रयं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम्

—दरिद्रता मनुष्य की जीते-जी मौत है।

२४

नास्त्यमानभयमनार्यस्य

—नीच पुरुष को अपमान का भय नहीं होता।

२५

अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते

—धनहीन मनुष्य के बुद्धि नहीं रह जाती।

२६

इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति

—इंद्रियां मनुष्य को बुढ़ापे के वश में कर देती हैं।

२७

म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम्

—म्लेच्छों की भी अच्छी बात को ग्रहण कर लेना चाहिए।

२८

शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः

—शत्रु के भी अच्छे गुणों को ग्रहण कर लेना चाहिए।

२९

स्थान एव नराः पूज्यन्ते

—स्थान अथवा पद के अनुसार मनुष्यों का आदर होता है।

३०

कदापि मर्यादां नातिक्रमेत्

—मर्यादा का अतिक्रमण कदापि नहीं करना चाहिए।

३१

न महाजनहासः कर्तव्यः

—बड़े आदमियों का उपहास नहीं करना चाहिए।

३२

कार्यानुरूपः प्रयत्नः

—कार्य के अनुरूप ही प्रयत्न होना चाहिए।

३३

वयोऽनुरूपो वेषः

—अवस्था के अनुरूप ही वेष होना चाहिए।

३४

स्नेहवतः स्वल्पो हि रोषः

—स्नेहीजन का रोष क्षणिक होता है।

३५

तिलमात्रमप्युपकारं शैलमात्रं मन्यते साधुः

—सत्पुरुष किसीके तिल मात्र उपकार को भी पर्वत के तुल्य मानता है।

३६

प्रत्युपकारभयादनार्यश्शत्रुर्भवति

—इस भय से कि उपकार का बदला न चुकाना पड़े, नीच पुरुष शत्रु बन जाता है।

३७

बहुजनविरुद्धमेकं नानुवर्तेत

—बहुत-से लोगों से वैर-विरोध रखनेवाले व्यक्ति का साथी नहीं बनना चाहिए।

३८

ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्त्तव्यः

—ऋण, शत्रु और रोग को निर्मूल कर देना चाहिए।

३९

आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च

—सदाचार से आयु और कीर्ति की वृद्धि होती है।

४०

स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति

—स्तुति से देवता भी संतुष्ट हो जाते हैं।

४१

शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः

—शत्रु की भी जीविका की हानि न करे।

४२

एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत्

—एरण्ड के सहारे हाथी से बैर मोल लेना ठीक नहीं है।

४३

यथा कुलं तथाऽऽचारः

—जैसा कुल होता है, वैसा ही आचार होता है।

४४

उपस्थितविनाशोः दुर्नयं मन्यते

—जिसका नाश होने को होता है वह दुर्नीति को मानन लगता है।

४५

अर्थार्थं प्रवर्त्तते लोकः

—संसार धन के पीछे चलता है।

४६

सत्संगः स्वर्गवासः

—सत्संग स्वर्ग में रहने के समान सुखदायक है।

४७

यत्र सुखेन वर्तते तदेव स्थानम्

—जहां मनुष्य सूखपूर्वक रह सके, वही अपना स्थान है

४८

नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः

—बुद्धिमानों का कोई शत्रु नहीं होता।

इस माला में

चुनी हुई लोकोपयोगी पुस्तकें सस्ते मूल्य में दी जा रही हैं। इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जा रहा है कि पुस्तकों में विविधता रहे, जिससे सभी रुचियों के पाठक उनसे लाभ उठा सकें।

सामग्री उत्कृष्ट, छपाई सुंदर और आवरण आकर्षक। वर्ष में बारह पुस्तकें निकालने का विचार है।

इस पुस्तक में

भारतीय वाङमय के विभिन्न ग्रंथों, संत-मनीषियों, चिंतकों एवं विद्वानों के विचारों का मंथन करके चुने हुए सुभाषितों को संग्रहीत किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से सारी सामग्री को ४५ विषयों में विभक्त कर दिया गया है।

यह पुस्तक सभी वर्गों के पाठकों के लिए उपयोगी है और इसे जितनी बार पढ़ा जायगा, उतना ही लाभ होगा।

सस्ता साहित्य मण्डल